RNI No. 7127/60
डाक पंजीयन संख्या - Jaipur City / 411 2020-22

संघशक्ति

मासिक समाचार पत्रिका

वर्ष : 57 अंक : 12 प्रकाशन तिथि : 25 नवम्बर कुल पृष्ठ : 36 प्रेषण तिथि : 4 दिसम्बर, 2020
शुल्क एक प्रति : 15/- वार्षिक : 150/- रुपये पंचवर्षीय 700/- रुपये दस वर्षीय 1300/- रुपये

जलवे अनेक रण के दिखाकर चले गए।
नापा न जा सका वो कर्जा कर चले गए।।

हितकारी मेडिकोज

राजकीय चिकित्सालय के सामने, बाड़मेर-344001 राजस्थान
फोन : 02982226666

प्रो. पृथ्वी सिंह राठौड़
आजाद सिंह राठौड़
सिद्धार्थ सिंह राठौड़

-: सम्बंधित फर्म :-

हितकारी & स्वराज इंटरप्राइजेज प्राइवेट लिमिटेड
हितकारी प्रोजेक्ट्स प्राइवेट लिमिटेड

संघशक्ति

4 दिसम्बर, 2020

वर्ष : 56 अंक : 12

-: सम्पादक :-

लक्ष्मणसिंह बेण्यांकाबास

शुल्क – एक प्रति : 15/- रुपये, वार्षिक : 150/- रुपये, पंचवर्षीय : 700/- रुपये, दस वर्षीय : 1300/- रुपये

विषय – सूची

☞ समाचार संक्षेप	✍	04
☞ चलता रहे मेरा संघ	✍ श्री भगवानसिंह रोलसाहबसर	05
☞ पूज्य श्री तनसिंहजी (के सम्बन्ध में)	✍ श्री चैनसिंह बैठवास	06
☞ मेरी साधना	✍ प्रो. रूपसिंह लिम्बड़ी	09
☞ भारतीय संस्कृति के प्राण मर्यादा पुरुषोत्तम....	✍ स्वामी धर्मबन्धु	14
☞ महान् क्रान्तिकारी-राव गोपालसिंह-खरवा	✍ डॉ. भंवरसिंह भगवानपुरा	20
☞ युग पुरुष	✍ स्व. भंवरसिंह कालवी	22
☞ स्वधर्म और स्वभाव	✍ कृपाकांक्षी	24
☞ चित्रकथा-'लोकदेवता बाबा रामदेव जी'	✍ श्री ब्रजराजसिंह खरेड़ा	26
☞ रिश्तों की नाजुकता	✍ श्री महिपालसिंह चूली	28
☞ विचार-सरिता (षष्टि: लहरी)	✍ श्री विचारक	29
☞ स्वयं के बारे में भी गम्भीरतापूर्वक चिंतन करें	✍ श्री भँवरसिंह रेड़ी	31
☞ अपनी बात	✍	33

समाचार संक्षेप

संघ प्रमुख श्री का प्रवास :

दंपती शिविर बाड़मेर हेतु संघप्रमुख श्री 5 मार्च को जयपुर से बाड़मेर गये। शिविर के बाद लोकडाउन और महामारी के फैलाव के कारण सात माह बाद 3 अक्टूबर को जयपुर वापस पधारे। जयपुर से 5 नवम्बर को वापस प्रवास पर रवाना हुए। जयपुर प्रवास के बीच संघप्रमुख श्री दो बार स्वामी अड़गड़ानन्द जी महाराज के यहाँ फरीदाबाद गए। जयपुर प्रवास की अवधि में ही पू. आयुवानसिंह जी के सौ वर्ष पूर्ण होने पर आयोजित कार्यक्रमों का समापन 17 अक्टूबर को हुआ। इस समापन कार्यक्रम में माननीय संघप्रमुख श्री का उद्‍बोधन वर्चुअल रूप से सभी संघ बन्धुओं के लिए हुआ। उसी दिन जयपुर की प्रात:कालीन शाखा में पूज्य आयुवानसिंहजी को श्रद्धांजलि सभी स्वयंसेवकों ने पुष्पांजलि के माध्यम से दी

25 अक्टूबर को दशहरा था। सुबह रविवारीय शाखा में दशहरा (विजयादशमी) मनाया गया। शस्त्र की पूजा इस अवसर पर की जाती है। संघ के कार्यक्रमों में शस्त्र के साथ शास्त्र की पूजा भी की जाती है। शास्त्र हमें निर्देश देता है कि शस्त्र का प्रयोग कहाँ हो। किसके पक्ष में हो और किसके विरुद्ध हो। विजयादशमी, रावण पर भगवान राम की विजय के उपलक्ष में मनाई जाती है। संघप्रमुख श्री ने समझाया कि प्रतिवर्ष हम रावण को इस दिन जला डालने का कार्यक्रम करते हैं पर पुन: रावण तो अगले वर्ष फिर आ जाता है। रावण कौन है? हमारे स्वयं की बुराइयाँ ही रावण है। अभ्यास से हम हमारी बुराइयों को समाप्त करें, यही रावण को मारने का वास्तविक रूप है। हम ऐसा कर पाएँ तभी दशहरा मनाना सार्थक है, अन्यथा यह औपचारिक क्रिया मात्र है। बुराइयाँ अभ्यास से ही नियंत्रित होती हैं और संघ हमें उस अभ्यास की राह दिखाता है। हमारी इन्द्रियाँ जो बहिर्मुखी बन जाती हैं वे ही बुराइयों को पोषित करती हैं। संघ हमें संदेश देता है कि इन्हीं इन्द्रियों को नियंत्रित कर हमें विजय प्राप्त करनी है।

5 नवम्बर को संघप्रमुख श्री जयपुर से कुचामन पहुँचे। कुचामन में 'आयुवान निकेतन' में स्वयंसेवक मिलने आए। लम्बे समय से व्यक्तिगत उपस्थिति की बजाए केवल वर्चुअल रूप से ही कार्यक्रम हो रहे थे। अत: संघप्रमुख श्री के सान्निध्य का अवसर लेने आसपास के स्वयंसेवक पहुँचे। सभी के समाचार जाने और इस महामारी की अवधि में हो रहे कार्य की जानकारी ली। आयुवान निकेतन में हुए नव निर्माण के सम्बन्ध में भी आवश्यक निर्देश दिए।

6 नवम्बर को दोपहर बाद संघप्रमुख श्री बीकानेर पहुँचे। 7 नवम्बर प्रात: तक 'नारायण निकेतन' बीकानेर में संघप्रमुख श्री से मिलने स्थानीय स्वयंसेवक आते रहे जिनसे संघ कार्य की जानकारी ली गई। कार्यालय भवन की व्यवस्था सम्बन्धी चर्चा भी की गई। बुजुर्ग स्वयंसेवक जो वहाँ नहीं पहुँच सके, उनसे दूरभाष से सम्पर्क किया। 8 नवम्बर को प्रात: रवाना होकर श्री बालाजी स्थित स्वामी अड़गड़ानन्द जी के आश्रम में कुछ समय रुककर शाम को जोधपुर पहुँचे। इस मार्ग में नागौर के स्वयंसेवकों से पुन: मिलना हुआ, पहले 6 नवम्बर को कुचामन से बीकानेर जाते हुए भी नागौर के साथियों से मिलना हुआ।

9 नवम्बर को जोधपुर स्थित कार्यालय 'तनायन' में कार्यक्रम आयोजित हुआ जिसमें बुजुर्ग स्वयंसेवकों सहित स्थानीय सभी स्वयंसेवक सम्मिलित हुए। संघप्रमुख श्री ने स्वनिर्माण पर जोर देने हेतु संदेश दिया। संसार के वातावरण को श्रेष्ठता की ओर मोड़ने की आवश्यकता है और ऐसा श्रेष्ठ लोग ही कर सकते हैं, इसलिए हमें श्रेष्ठ बनना है। संघ हमें व्यवस्थित अभ्यास के अवसर प्रदान करता है, जिससे श्रेष्ठता की ओर बढा जा सकता है। संघ की हीरक जयंती और पू. तनसिंहजी की जन्मशताब्दी के बारे में भी जानकारी दी गई। 10 नवम्बर को अपराह्न के बाद संघप्रमुख श्री बाड़मेर के लिए रवाना हो गए। ❒

चलता रहे मेरा संघ

{उच्च माध्यमिक शिविर पेमासर (बीकानेर) में 22.5.2011 को संघप्रमुख श्री भगवानसिंह जी द्वारा सुबह 9 बजे के कार्यक्रम में दिए उद्‌बोधन का संक्षेप।}

श्री क्षत्रिय युवक संघ में सिखाई जाने वाली बातें उत्तम हैं। संत महात्माओं की शास्त्रों की बातें भी उत्तम होती हैं। किन्तु संत महात्माओं और हमारे जीवन में बहुत अंतर है। इस अन्तर को दूर किया जाए, इसीलिए शिविरों का आयोजन किया जाता है। आदर्श और व्यवहार में अन्तर रहता ही है। व्यवहार में जितना सुधार होगा, आदर्श और आगे बढ जाएगा, अधिक श्रेष्ठता प्राप्त करेगा। व्यवहार और आदर्श के बीच जो दूरी है, उसको न्यूनतम करना है। उत्तम बातों का सुन लेना या पढ लेना पर्याप्त नहीं है पर उपयोगी तो है। अब इन बातों के अनुसार चलना शेष रहता है। हमने उत्तम बातें बहुत सुन रखी हैं फिर भी जीवन व्यवहार वैसा नहीं बन पाता और जीवन में विसंगतियाँ पाई जाती हैं। इसीलिए बार-बार शिविर में आना आवश्यक है, न जाने कब मर्म पर चोट लग जाए और आदर्श की ओर कदम संकल्प के साथ बढ चलें।

सारे संसार का वातावरण हमारी परम्पराओं के विपरीत है। हमारी परम्पराओं और आज के वातावरण के बीच की दूरी को कम करने का हमारा प्रयास है। अहंकार, द्वेष, गलत मान्यताएँ आदि उस दूरी को कम करने के प्रयास में बाधक बनकर खड़े रहते हैं। इसलिए स्वयं का आकलन करें कि मेरे में क्या अभाव है। दूसरों का छिद्रान्वेषण नहीं करें। अपने दोष देखना और उन्हें दूर करना ही साधना का मार्ग है। दूसरों के गुण ही देखें। यहाँ की बात सुनते हैं पर वह यदि जीवन में न उतरे तो यह बड़ी दुखती है। जिसको जो दायित्व दिया जाता है, वह उस दायित्व को निभावे। दूसरों के कार्य में टांग अड़ाने की प्रवृत्ति से बचें। ऐसा करने पर घर-परिवार में भी कलह खत्म हो जाएगी।

आसुरी सम्पदा को दबाना है। दुष्टों का दलन करना है पर उसका प्रारम्भ भीतर के दुष्ट-दलन से होगा। प्रमाद, आलस्य, गाली-गलौच आदि दुष्ट ही तो हैं। क्षत्रिय युवक संघ की नजरों में आप अच्छे लोग हैं इसलिए आपको दायित्व देना है पर यदि आप जैसा होना चाहिए वैसा काम नहीं करते हैं तो परिणाम आशानुकूल कैसे होगा। मैं ऐसा बनूं कि मेरे में मेरे घर वाले श्रेष्ठता देखें। कार्यालय या जहाँ भी मैं काम करता हूँ, वहाँ भी लोग मेरे में श्रेष्ठता देखें, इस भाव के अनुसार अपना जीवन बनाएँ। हमारे यहाँ के ये सारे कार्यक्रम बहुत ही काम के हैं। आपको इनके माध्यम से अमृत मिल रहा है। इस श्रेष्ठता को ग्रहण कर लें। सोए हुए संसार को जगाने वाली टीम तैयार करनी है, अत: अपने आपको महत्त्व दें और ऐसे श्रेष्ठ आचरण को अपनाएँ। आप नेष्ठ नहीं, श्रेष्ठ हो। अत: अपनी देवी सम्पदा को प्रकट करना होगा। आज की आवश्यकता है जन जागरण अभियान, उसे समझें और उसके कार्यकर्ता बनें। बहुत बड़ा दायित्व है यह, जिसे गंभीरता से लेना है।

बड़े अरमान लेकर क्षत्रिय युवक संघ आपके द्वार तक आता है। आपके स्वयं के अरमान यदि संघ के अरमानों से अलग हैं, दूसरे हैं तो यह दरिद्रता है। इस दरिद्रता से जल्दी से जल्दी छुटकारा पाएं इसी में हित है। इसी में आपकी शक्ति है। हनुमान की सी शक्ति आप में है, पर छिपी हुई है, उसे प्रकट करो। आप यदि जिम्मेवार हो गये हैं तो अब आपका व्यवहार जिम्मेवारों जैसा ही होना चाहिए। वैसा व्यवहार ही आप में प्रकट हो। परस्पर पंचायती करने में आपको नहीं उलझना है, परस्पर पारिवारिक भाव लाओ। जिसको जो दायित्व दिया जाए, उसे भली प्रकार निभाए। किसी को घटप्रमुख का दायित्व दिया गया तो वही हमारा घटप्रमुख और हम उसके साथ अपना-अपना दायित्व निभाएँ। ऐसा करके देखें, आपके जीवन में अद्‌भुत परिवर्तन आएगा।

(शेष पृष्ठ 30 पर)

गतांक से आगे

पूज्य श्री तनसिंहजी (के सम्बन्ध में)

''जो कुछ देखा, समझा व अनुभव किया''

– चैनसिंह बैठवास

पूज्य श्री तनसिंहजी ने अपने सहयोगियों के सहयोग की तो सराहना की है, साथ-साथ अपने विरोधियों के विरोध का भी आकलन सहयोग के रूप में ही किया है अर्थात् अपने सहयोगियों के सहयोग के साथ-साथ अपने विरोधियों के विरोध को भी कम महत्त्व नहीं दिया है। पूज्य श्री तनसिंहजी ने अपने विरोधी को सम्बोधित करते हुए कहा –

''मुझे जिन लोगों ने कन्धे से कन्धा भिड़ाकर अपना सहयोग दिया, उससे कम सहयोग तुमने भी नहीं दिया। तुम मेरे विरोधी हो। विरोध कुछ है ही नहीं। वास्तव में किसी नकारात्मक वस्तु का कोई अस्तित्व होता ही नहीं। उसका अस्तित्व एक काल्पनिक भ्रान्ति है और वह भ्रान्ति तब तक रहती है, जब तक कोई उस भ्रान्ति को सत्य मानता है। तुमने जब तक अपने आपको मेरा विरोधी माना है तब तक ही तुम मेरे विरोधी रहे हो।

''दार्शनिक और तत्त्वविदों ने कहा है कि संसार में कोई भी वस्तु पूर्ण नहीं है। विचारों के सम्बन्ध में भी यही बात कही जा सकती है। मैं भी यह स्वीकार करता हूँ कि मेरी विचारधारा पूर्ण नहीं है, परन्तु पूर्ण होने के लिए जीवन भर चेष्टा करना ही पुरुषार्थ है। हर अपूर्ण विचार का एक विरोधी विचार होता है और दोनों से अच्छी बातें लेकर एक नवीन सत्य का सृजन होता है जो पूर्व सत्य और उसके विरोधी विचार दोनों से वह नवीन विचार सत्य के अधिक समीप और अधिक पूर्ण होता है।

''यह बात यदि तुम्हारे और मेरे सम्बन्ध में घटित की जाए तो सत्य घटित होती है लेकिन इस पूरे संघर्ष का जब मैं हिसाब लगाता हूँ तो तुम्हें घाटे में ही पाता हूँ। तुम अपना सत्य प्रगट कर मुझे पूर्णता का मौका देते हो, स्वयं कृपण बनकर मुझे उदार होने का श्रेय प्रदान करते हो, ऐसा सहयोग मेरा साथी भी मुझे क्या दे पाएगा।''

समाज में कुछ लोगों का दुर्व्यवहार, उनकी गलत नीतियाँ तथा गलत धारणा समाज में बिखराव व घृणा का वातावरण पैदा करती है। कुछ लोग अपने को महान व दूसरों को तुच्छ समझने का भ्रम पाले रहते हैं। पूज्य श्री तनसिंहजी का ऐसे एक महारथी से एक सामाजिक मंच पर सामना हुआ और दोनों के मध्य जो कुछ घटा उन्हीं (पूज्यश्री) की जुबान से –

''वर्षों पहले मैं सामाजिक कार्य के दरवाजे पर सहयोगियों की खोज में पहुँचा ही नहीं था कि सर्वप्रथम तुम्हारा ही मुझे साक्षात्कार हुआ। तुमने जिस तत्परता से मेरा स्वागत किया, वह भूल नहीं सकता। मैं एक सभा की कार्यकारिणी का सदस्य लिया जाने वाला था, किन्तु तुमने मेरा इस बात पर विरोध किया कि, मैं एक निर्धन साधनहीन हूँ, मेरे पास न मोटर है और न बंगला और समाज का कार्य वही कर सकते हैं, जिनके पास ऐसे साधन हैं। मेरे जैसा निर्धन शहंशाहों की क्या सेवा कर सकता है?

''तुम्हारे इस पहले विरोध को मैंने एक कड़वे घूंट की भाँति पी लिया। तुम्हारे तर्क चाहे कितने ही पंगु हों, चाहे कितने ही एकांगी हों, किन्तु उनमें भी एक सत्य तो जरूर था कि मुझे साधन जुटाने होंगे और स्वावलम्बी बनना होगा। विधि का विधान तो देखो, कि समय ने न केवल मुझे ही झकझोरा बल्कि तुम्हें भी मेरा जैसा बना दिया। एक दिन आया जब बरसात की रात बीत जाने पर मैंने तुम्हारी मोटर को देखा और यह देखा कि तुम उसके नीचे सो रहे थे। मैंने तुम्हें पूछा भी कि तुम्हें वे दिन याद हैं या नहीं कि जिस दिन तुमने मेरा इतना कटु विरोध किया था। तुमने उत्तर दिया था, कि मुझे वे दिन अच्छी तरह याद हैं, किन्तु अब तुम्हारे पास केवल इसलिए आता हूँ कि मेरे स्वप्नो के सत्य होने की यदि आंशिक रूप से

भी संभावनाएँ हैं तो अब इसी प्रवृति से है। अब बताओ तुम्हें मैं विरोधी कैसे कहूँ? तुम्हारे और मेरे स्वप्नों में अब तो कोई अन्तर नहीं रहा। जो अन्तर पहले दिखाई देता था वह आवश्यक था, अन्यथा उसके बिना तुम्हारा और मेरा यह पुण्य मिलन कैसे होता? तमने जिस बात के कारण मेरा विरोध किया था, उन सब पर मैंने विजय प्राप्त कर ली है। मैं अपने कार्य में अपनों से सहयोग की भीख माँगता तो हूँ किन्तु वास्तव में जिसे भिखारी कहना चाहिए वह भिखारी नहीं हूँ।''

श्री क्षत्रिय युवक संघ के कुछ स्वयंसेवकों का मानस था कि एक सलाहकार समिति बने जो श्री क्षत्रिय युवक संघ के काम में सलाह देने का काम करे। उन स्वयंसेवकों ने अपने मानस के अनुरूप पूज्य श्री तनसिंहजी के सामने सलाहकार समिति की माँग रखी और इस सलाहकार समिति के निर्देशानुसार श्री क्षत्रिय युवक संघ को काम करने की राय दी। उनका यह विरोध सलाहकार समिति की माँग के रूप में पूज्य श्री के सामने प्रगट हुआ। उनकी इस माँग पर पूज्य श्री तनसिंहजी ने कहा –

''मेरे विरोधी के रूप में दूसरी बार तुम मेरे ही घर में उदय हुए। यह एक अनोखी बात थी कि तुम मेरे अत्यन्त विश्वस्त कार्यकर्ता थे, फिर भी तुम्हारी बुद्धि की सर्वतंत्र स्वतंत्र माँग में तुम बह गए और तुमने एक सलाहकार समिति की माँग की। एक भोले-भाले पंछी को भी तुमने अपनी ओर फांस लिया और इस बात का दावा करने लगे कि एक व्यक्ति से जो भूल हो सकती है, वह पंचायत से नहीं हो सकती। मेरे प्रिय विरोधी! तुमने तथ्यों का कभी गंभीरतापूर्वक चिन्तन नहीं किया। क्या तुम अपने जीवन में एक भी ऐसी घटना का उदाहरण दे सकते हो जब किसी महत्त्वपूर्ण मसले पर तुम्हारी सलाह नहीं ली गई हो। इतना ही नहीं तुम्हारी राय ही नहीं, अपने प्रत्येक ही साथी की राय का मैं बहुत ही आदर करता हूँ। जिस बात को मैं गम्भीरतापूर्वक सत्य मानता हूँ उसे भी कार्य रूप में तभी चरितार्थ करता हूँ जब कि तुम और प्रत्येक व्यक्ति उपरोक्त कार्य के लिए बौद्धिक ही नहीं, नैतिक समर्थन प्रदान करने के लिये तैयार होते हो। क्या किसी पंचायत में ऐसी सहृदयता और सहिष्णुता हो सकती है कि वह अल्पमत का भी समान आदर करती हो।

''ऐसी बात नहीं कि यह कमजोरी है। कौटुम्बीय जीवन की यह विशेषता है, कि कुटुम्ब के प्रत्येक घटक को उत्तरदायी बनाया जाये और उसे यह अनुभव कराया जावे, कि वह भी इस कुटुम्ब का एक जीवन्त और ज्वलन्त घटक है। यह सही है, कि तुम्हारी इस राय को मैं अन्त तक नहीं मान सका क्योंकि तुम्हारी पंचायती केवल पाखण्ड फैला सकती थी, आलोचनाओं का मुँह बन्द कर सकती थी, किन्तु वह आलोचनाओं को हजम नहीं कर सकती थी। तुम्हारी सलाहकार समिति प्रतिक्रियाओं को रोकने का एक निरर्थक और निष्फल प्रयत्न मात्र ही था, उसके सृजन और पोषण की दुर्दान्त क्षमताएँ नहीं थी।''

आगे बढने के लिए जीवन में संघर्ष जरूरी है। काम करने वाले के सामने जब विरोध प्रकट होता है तो वह विरोध उसे और अधिक सक्रिय कर उसके काम करने की गति को भी बढा देता है। जो होना है वो तो हो के रहेगा, उसे कोई रोक नहीं सकता, इस सत्य के सम्बन्ध में पूज्य श्री तनसिंहजी ने कहा –

''तीसरी बार तुम्हारा विरोध एक बड़े सम्मेलन में प्रकट हुआ। तुमने हमारी उठती हुई आवाज को रोकने के लिये भोंपू का मुँह पकड़ लिया। तुमने प्रगति के इतिहास के इस सत्य को भुला दिया कि उदीयमान कौम की आवाज भोंपुओं के सहारे नहीं गूंजा करती। समय जिस सत्य को संसार में अवतरित करना चाहता है, वह सत्य तो अवतरित होकर ही रहेगा, चाहे उसके लिए कितनी ही बाधाएँ उपस्थित की जावें। आज मैं जब उस स्थान पर जाता हूँ तो तुम्हारी स्मृतियाँ हरी हो जाती हैं। तुमने यह आज्ञा प्रसारित कर दी थी कि श्री क्षत्रिय युवक संघ की (क्षात्र) प्रवृति उक्त छात्रावास या स्थान में नहीं चलने दी जाए किन्तु आज वही भूमि है, वही छात्रावास है, वही प्रवृति चल रही है, हम भी वहीं हैं, केवल तुम्हीं वहाँ नहीं हो। तुम्हारे विरोध ने तुम्हें ही वहाँ से उठा दिया। नव

जागरण तो अब भी उसी गति से हिलोरें ले रहा है। तुमने मनाही कर दी थी कि कोई हमें भोजन नहीं देगा, किन्तु विचारों के प्रसार के लिए जितनी रोटी दाल की आवश्यकता नहीं, उतनी उस त्याग की जरूरत होती है जो भूख लगने पर बुझती नहीं, और भी अधिक सुलगती है। पन्द्रह दिन तक हमने सब्जियाँ उबाल कर खाई और उस स्थान पर सदा के लिए अपनी जड़ें जमा दी। तुम सहयोग देकर भी जो काम नहीं कर सकते थे वह तुम्हारे विरोध ने कर दिखाया, इसलिए तुम्हारे प्रति हमारा क्षोभ नहीं, हम तो तुम्हारे चिर कृतज्ञ हैं।

''विरोध केवल प्रकृति की उसके पुत्र के लिए परीक्षा नहीं, वह संतान के लिए प्रेमपूर्ण उपहार है। बिना अवरोध के चलने वाली कोई धारा सहज गति से ही चलती रहेगी। विरोध उस धारा में रुकावट अवश्य पैदा करता है, किन्तु विरोध को पार करने पर उस धारा को सहज गति से भी अधिक द्रुत गति अपने लक्ष्य साधन के लिए मिलती है। एक समय ऐसा आया कि विरोध समाप्त हो गया था और जीवन में गति लाने के लिए विरोध होना आवश्यक था। बहुत विचार के बाद यह निश्चय किया गया कि कोई विरोध तैयार करवाया जावे। तुम आश्चर्य करोगे कि इस प्रकार अपने ही पैरों पर कुल्हाड़ी मार कर अपने जीवन वृक्ष को पनपाने का मृगतृष्णामय और अद्भुत प्रयोग कौन करेगा। लेकिन आश्चर्य की बात नहीं, यह तो एक यथार्थ और सफल प्रयोग था। इस काम को सौंपा गया ऐसे ही एक विचित्र साथी को जिसकी वफादारी प्रगट करने का तरीका है विरोधी का क्रीतदास बनना। तलाक देकर जो पतिवृत धर्म को प्रगट कर सकता हो, बड़ से निकलने के लिये पीपल में घुसता हो और जो गालियों द्वारा ही प्रेम प्रगट कर सकता हो, वह उस कार्य के लिए उपयुक्त होता है। अफसोस है कि तुम विरोधी होकर भी उसके फैलाए हुए जाल में फंस गए और तुम्हारे पक्ष में बुलाये गये लोगों के सम्मेलन ने हमारा नुकसान पहुँचाने की अपेक्षा हमारा लाभ ही किया। तुम नहीं मानोगे किन्तु यह सत्य है कि विरोध हमारे लिये आवश्यक है। वह परेशानी देता है, उन लोगों को जिनकी फल के प्रति आसक्ति है किन्तु वह प्रेरणा भी देता है, हमारी प्रसुप्त शक्तियों को जागृत भी करता है।''

दो शब्द हैं सक्रिय और निष्क्रिय। जहाँ सक्रियता है, वहाँ सफलता है और जहाँ निष्क्रियता है, वहाँ असफलता है। इस सम्बन्ध में पूज्य श्री ने बताया –

''मैं यह दावा नहीं करता कि मैं जो कुछ कहता हूँ, वही सही है और तुम्हारी बात में कुछ भी सार नहीं है। सार की बात तो यह है कि मुझे अपने असत्य में जितनी निष्ठा है उतनी निष्ठा तुम्हें अपने सत्य में भी नहीं है। फिर बताओ तुम मुझे कैसे पराजित कर सकते हो। यदि तुम कहते हो वही सत्य है, तो तुम अपने विरोध को ठण्डा क्यों कर देते हो। तुम्हारे सत्य के पोषण के लिए तुम प्रमाद कैसे कर लेते हो। तुम्हें ऐसे कुछ विरोध की अपेक्षा भयंकर और शाश्वत विरोध करना चाहिए। तुम्हें मैदान में नहीं पहाड़ पर चढ़कर विरोध करना चाहिए, अन्यथा तुम्हारा सत्य भी शक्ति के अभाव में निर्बल की मौत मर जाएगा।

''लगभग ग्यारह वर्ष हो गये, जब तुम्हारे विरोध को अन्तिम रूप से समाप्त किया। तुम आज तक भी तरसते आ रहे हो हमारे सहयोग और सान्निध्य के लिए, किन्तु चाहते हुए भी तुम उसे प्राप्त नहीं कर पा रहे हो। इसका कारण यह नहीं है कि हम तुम्हारे सान्निध्य को पसन्द नहीं करते, हम तो चाहते हैं कि तुम आओ। तुम्हारे आने के लिए हमने अनेक बार बन्दनवार सजाए किन्तु तुम केवल इसलिए नहीं आ सके हो कि तुमने कुछ विशेषताएँ खो दी और तुम्हारे विरोध ने ही उन विशेषताओं से हमें समलंकृत कर दिया। जब तुम हमसे विमुख होकर चले गए तब तुम निष्क्रिय हो गए और यही तुम्हारी ऐतिहासिक भूल हुई। आज तक विरोधियों की यही भूल रही है कि विरोध करके वे निष्क्रिय होते गए। निष्क्रियता विरोध को भी समाप्त कर सकती है और श्रेष्ठ पुरुषों को भी समाप्त कर सकती है। जब तुम निष्क्रिय हुए तो तुम्हारी क्षमताओं की अनुपस्थिति और अभाव ने हमें चिन्तित कर दिया

(शेष पृष्ठ 32 पर)

<u>गतांक से आगे</u>

मेरी साधना

लेखक – पू. आयुवानसिंहजी, गुजराती भाष्य–श्री बलवंतसिंह पांची, हिन्दी अनुवाद–प्रोफेसर रूपसिंह लिम्बड़ी

अवतरण–57

अभ्यास मेरा अन्तरंग सखा है। इसकी सहायता से मैं अपनी साधना के शत्रु–भावों का दमन और मित्र–भावों का उत्कर्ष करूँगा,–शरीर, मन और आत्मा को संस्कारों के साँचे में ढालूँगा। फिर समत्वभाव को उस स्थिति की प्राप्ति होगी जो साधकों का योग, योगियों का साध्य और जीवन का सुखद शौच है।

संसार वा मन शरीर को, आत्मा को।
उत्साह अमूल्य धन पाने को परमात्मा को।।

इस अवतरण का प्रारम्भ करते हुए, साधक 'अभ्यास' को अपने अन्तरंग मित्र के रूप में स्वीकार करता है। फिर उसकी सहायता से अपनी साधना (क्षात्रधर्म पालन) में जो भी शत्रुभाव आते हैं उनका दमन और जो मित्रभाव (क्षात्रधर्म पालन में सहायक) आते हैं उनका उत्कर्ष करने का संकल्प करता है। 'मेरी साधना' के छोटे–छोटे अवतरणों में एक–एक शब्द को, शब्द की गम्भीरता को समझना बहुत आवश्यक है।

इस अवतरण के दो शब्द 'शत्रुभाव' और 'मित्रभाव' के केवल वाच्यार्थ (शब्दार्थ) से ही संतुष्ट नहीं होना चाहिए। उसके लक्ष्यार्थ और उसकी व्यंजना की गहराई में जाना चाहिए, तब जाकर हम उन शब्दों के अर्थगांभीर्य को पा सकते हैं। हमें इस पर विचार करने की आवश्यकता है कि वे कौनसे भाव हैं जो क्षात्रधर्म पालन में बाधक हैं और वे कौनसे भाव हैं जो क्षात्रधर्म पालन के प्रेरक एवं पोषक हैं। वे शत्रुभाव कौनसे हैं? तो व्यक्गित स्वार्थ, भोगासक्ति, द्वेष, ईर्ष्या, अहंकार इत्यादि वे भाव हैं जो कर्तव्य पालन में बाधा उत्पन्न करते हैं, उन भावों का दमन करना चाहिए। मित्रभाव हैं–प्रेम, परमार्थ, पराक्रम, संवेदना, सेवा, सुखभोग का त्याग एवं बलिदान की भावना आदि, ये वे भाव हैं जो हमें अपने कर्तव्य पथ पर चलने की प्रेरणा और प्रोत्साहन देकर हमारा साहस बढाते हैं।

इन शत्रुभावों के दमन और मित्रभावों के उत्थान के लिए 'अभ्यास' आवश्यक ही नहीं अनिवार्य है। अभ्यास शब्द का अर्थ है-अभि=बारम्बार, आयास=प्रयत्न। (अभि+आयास=अभ्यास) बार–बार प्रयत्न करने से ही उसमें सफलता प्राप्त की जा सकती है। साधक अभ्यास को अपना निजी मित्र मानकर, शत्रुभाव का दमन एवं मित्र भाव का उत्कर्ष चाहता है। अभ्यास को मित्र इसलिये माना गया है कि मानव जीवन के निर्माण में उसका बड़ा सहयोग होता है। इन मित्र भावों के अभ्यास के कारण ही हमारे पूर्व–पुरुषों ने समाज के निर्बल वर्ग, गाय, अबला, पीड़ित की रक्षा के लिये अपने आपका बलिदान दिया है। शहादत पायी है। और इसी कारण से ही इन्हें 'बापू' का विरुद मिला है, आज तक हम भी जिसका उपभोग कर रहे हैं। परन्तु हम आज अपने कर्तव्य पथ से विचलित होकर शत्रुभाव का पोषण कर रहे हैं, अभ्यास कर रहे हैं। हमारे लिये तो 'करत कुसंग चाहत कुशल' यही बड़ी अफसोस जैसी स्थिति है। आज भी आम जनता हमें 'बापू' शब्द से सम्बोधित करती है। परमशक्ति हमें वह सामर्थ्य प्रदान करे जिससे हम अपने 'बापू' पद का गौरव निभा सकें।

शत्रुभाव का अभ्यास हमारा अन्तरंग मित्र है। इसी कारण से हम सामाजिक संगठन करने में असफल रहते हैं। अपनी इस असफलता को ढंकने के लिए हम साधारण–सी सामाजिक प्रवृत्तियों द्वारा समाज सेवा करने का संतोष लेते हैं। विविध प्रकार के मादक पदार्थों के सेवन का व्यसन एवं समाज का अहित करने वाली रूढियों तथा गलत परम्पराओं के खिलाफ हम एक शब्द भी नहीं बोलते हैं। हमने ऐसी मानसिकता बना ली है कि यह तो सब चलता

रहेगा, इसके लिये व्यर्थ समय बिगाड़ने की जरूरत नहीं है; शिक्षा का प्रमाण बढेगा, संपत्ति बढेगी तो सब अपने आप ठीक हो जाएगा।

किसी भी सामाजिक विकास की नींव संगठन है। यदि हम शत्रुभाव का दमन और मित्रभाव का उत्कर्ष करने का अभ्यास शुरू कर दें तो सामाजिक संगठन, सामाजिक सफलता के चमत्कार करने की शक्ति का निर्माण कर सकें। परन्तु इस प्रकार के अभ्यास एवं पुरुषार्थ करने के बजाए हम देवी-देवताओं तथा साधु-बाबाओं के आशीर्वाद से चमत्कार सृजन करने की आशा के पागलपन में दिन काट रहे हैं।

यहाँ पर साधक ने शरीर, मन और आत्मा को संस्कृत करने का सूचन किया है। हमारे अपने में क्षात्र संस्कारों का विकास हो, यही साधक की अपेक्षा है। और इन्हीं संस्कारों के द्वारा अमूल्य उपलब्धि की बात करता है। उन संस्कारों और उपलब्धि के विषय में मुझे अधिक विस्तार से चर्चा नहीं करनी है। साधक के शब्दों में ही उस उपलब्धि, समाज चिंतकों, संस्कार प्रेमियों एवं समाज का उत्कर्ष और प्रगति के चाहक सामाजिक अगुवाओं के लिए प्रस्तुत करता हूँ। इन संस्कारों से समत्व भाव तो आयेगा और उस समत्व भाव से वह स्थिति प्राप्त होगी जो साधकों के योग, योगियों का साध्य और जीवन का सुखद अंत है। आया समझ में?

पू. तनसिंहजी के गीत की एक पंक्ति है-

समझ में न आये तो यही बात जानो।
अभी कई रातें जगानी है बाकी।।

अर्क- तेरी गति समझने को, तेरे नाम जपन को
हे तात! दया कर दे सुमति सुविचार

अवतरण-58

मैं अपनी साधना के अनुकूल परिस्थितियों का सृजन कर उस वातावरण का निर्माण करूँ जहाँ सद्-गुणों के पोषण और धारण का अभ्यास सम्भव हो। उचित वातावरण उस चिकित्सा केन्द्र के समान जीवनदायी है जहाँ वैज्ञानिक, मनोवैज्ञानिक, प्राकृतिक और कृत्रिम सभी उपायों से स्वास्थ्य लाभ कराया जाता हो। वातावरण मेरी संस्कार-निर्माण-साधना-पद्धति में सबसे प्रबल सहायक है। मैं इसकी अनुकूलता और पवित्रता का सदैव ध्यान रखूँ।

सद्गुण सिंचन संस्कार दान।
अनुकूल पवित्र माहोल करे सहाय।।

इस अवतरण में सामाजिक क्षेत्र में प्रवृत कार्यकर्ताओं के लिए महत्त्वपूर्ण बात कही गई है। किसी भी विचार को सफलतापूर्वक कार्य में परिवर्तित करने के लिये अनुकूल परिस्थिति और उचित वातावरण आवश्यक होता है। 'अनुकूल परिस्थिति' और 'उचित वातावरण' ये दोनों शब्द बड़े महत्त्व के हैं। इन्हें बराबर समझना चाहिए। भारतीय वेद-साहित्य एवं उपनिषद साहित्य में छोटे-छोटे सूत्रात्मक वाक्यों और एक-एक शब्द के द्वारा उपदेश देने की शैली प्रचलित है। एक शब्द में भी गुह्यतमय रहस्य प्रकट किया गया है।

विषयान्तर करने के लिए पाठकों से क्षमा याचना करके इस बात के लिए उपनिषद का एक उदाहरण प्रस्तुत करता हूँ। एक बार देवता अपने पिता ब्रह्माजी के पास गये और कहा-'हमें कुछ उपदेश दें।' ब्रह्माजी ने कहा 'द' फिर पूछा-'कुछ समझे?' देवों ने कहा-'हाँ, आप कहते हैं दमन करो।' फिर दानव भी गये और उपदेश पाने की इच्छा प्रकट की। तो पिता ब्रह्मा ने उन्हें भी कहा-'द'और पूछा कि 'बात समझ में आयी?' दानवों ने कहा कि आप हमें 'दया' करने को कहते हैं। फिर मानव भी उपदेश प्राप्त करने के लिये गये तो उन्हें भी ब्रह्माजी ने 'द' शब्द दिया। और उन्हें भी पूछा-'क्या समझे?' मानवों ने कहा कि आपने हमें 'दान' करने को कहा। अब देखें कि केवल एक अक्षर के शब्द से देव-दानव और मानव ने अलग-अलग अर्थ निकाला। यह उदाहरण संक्षिप्त शब्दों में उपदेश करने की शैली का नमूना है। आजकल यह शैली लुप्त हो गयी है अत: लम्बे-लम्बे प्रवचन दिये जाते हैं। 'मेरी साधना' की शैली वह है जिसमें संक्षिप्त वाक्यों में व्यापक अर्थ भरा हुआ है।

'मेरी साधना' का मतलब है 'क्षत्रिय युवक संघ' की साधना। इस साधना में परिस्थिति एवं वातावरण का बहुत महत्त्व है। अत: उसके शिविरों में अनुकूल परिस्थिति तथा वातावरण का आग्रह रखा जाता है। शिविर के लिए ऐसे स्थान को पसंद किया जाता है जहाँ पर बाह्य प्रदुषण और अन्य किसी प्रकार की बाधा-अवरोध न हो। शिविरों में वैज्ञानिक और मनोवैज्ञानिक पद्धति से शिक्षा दी जाती है जिसका शिविरार्थियों पर गहरा असर होता है।

साधक अनुकूल परिस्थिति तथा अनुकूल वातावरण के साथ पवित्रताओं को भी जोड़ता है। जब कोई वैद्य रोगी का उपचार करता है तो अनुकूल प्राकृतिक वातावरण को पसंद करता है, जिससे उपचार सफल हो। प्राकृतिक वातावरण के साथ पवित्रता का सहयोग हो तो सफलता शीघ्र मिलती है। इस बात को ध्यान में रखकर क्षत्रिय युवक संघ अपने सभी कार्यक्रमों का आयोजन करता है, जिससे वर्तमान में भोगवादी वातावरण में भी संघ के कार्यकर्ताओं में त्याग, निस्वार्थता एवं परोपकार की वृति जगाने में सफल होता है। परिस्थिति की अनुकूलता तथा वातावरण की पवित्रता का यह फल है। आजकल पवित्रता की बात थोड़ी-सी उटपटांग लगती है क्योंकि बहुत कम स्थानों पर पवित्रता का अनुभव होता है। फिर भी क्षत्रिय युवक संघ के शीर्षस्थ कार्यकर्ताओं के जीवन में पवित्रता का दर्शन होता है। और इससे मैं विश्वासपूर्वक कह सकता हूँ कि संघ कार्य 'ईश्वरीय कार्य' है। उसे सदैव ईश्वरीय सहायता, मार्गदर्शन और पवित्रता का बल मिलता रहा है। अत: इसकी सफलता में कोई संदेह नहीं है। क्षत्रिय समाज को इस कार्य की उपयोगिता, आवश्यकता और महत्त्व समझने के लिये, संघ की प्रवृतियों का सूक्ष्म निरीक्षण करना चाहिए। यह निरीक्षण-परीक्षण जितना शीघ्र होगा उतना शीघ्र अपने जीवन दर्शन में उसका स्थान मिलने पर सफलता भी शीघ्र मिलेगी।

हम बहुत से कार्य करते हैं किन्तु परिस्थिति तथा वातावरण की तरफ बहुत कम ध्यान देते हैं। इस कारण से पवित्रता विषयक हमारे विचार में कोई विशेष फर्क नहीं दिखाई देता है। परमशक्ति हमें पवित्रता को समझने का बल प्रदान करे।

अर्क- पवित्रता सात्विक पुरुषार्थ को बलप्रदान करती है।

चिंतन मोती- निन्दा क्या है? दोष को गुण के रूप में और गुण को दोष के रूप में प्रकट करना निंदा है। किसी की निन्दा न करें। निन्दा करने वाला स्वयं निंदित और अपमानित होता है। जो व्यक्ति अन्य की तरफ अंगुली निर्देश करता है, उसकी बाकी की सब अंगुलियाँ उसकी अपनी ओर निर्दिष्ट होती हैं। किसी की निंदा न करें। व्यक्ति के गुणों को ग्रहण करें, गुण की प्रशंसा करें। दोषों का त्याग करें। सत्य बोलें, यथार्थ बोलें।

अवतरण-59

भावना की उर्वरा भूमि में साधना के पौधे का बीजारोपण कर, उसमें ऐतिहासिक अनुभव का खाद्य, अभ्यास का जल, पवित्रता की धूप, निरन्तरता की वायु और धैर्य का संरक्षण देना किसी वैज्ञानिक, मनोवैज्ञानिक, परीक्षित और सांस्कारिक प्रक्रिया से ही सम्भव हो सकता है। अवैज्ञानिक और अव्यवस्थित प्रयास असफलता प्राप्ति का सरलतम साधन है।

साधना का पौधा उचित धरा में बोवें।
फिर श्रेष्ठ उपायों से उसकी रक्षा करें।।

इस अवतरण में साधक क्षत्रिय युवक संघ की संस्कारमयी कार्यप्रणाली का परिचय देता है। ऐसा आभास होता है। यद्यपि इसे पढ़कर ही कार्यप्रणाली की वास्तविक समझ नहीं आ सकती है, वास्तविक परिचय तो शिविरों में संलग्न होने पर ही हो सकता है, फिर भी थोड़ा बहुत ख्याल आ सकता है।

संघ के शिविरों में कार्यक्रम का प्रारम्भ सामाजिक भाव जागृति प्रेरक गीतों से किया जाता है। भावनाओं की उपजाऊ (फलदायी) भूमि में साधना के पौधे का बीज बोने के बाद आगे की प्रक्रिया समझाते हुए कहते हैं-यह साधना का पौधा, अर्थात् ध्येय-कर्तव्य का मार्ग, उसे ऐतिहासिक अनुभवों का खाद्य, अर्थात् हमारी ऐतिहासिक

विशेषताएँ एवं भूलों का ख्याल दिया जाता है। साधना के पौधे को अनुभव की खाद देने के बाद उसे अभ्यास के जल का सिंचन किया जाता है। कौनसा अभ्यास? धर्म का, शास्त्र का, जाति धर्म का और इतिहास इत्यादि अनेक विषयों के सार का अभ्यास कराया जाता है।

क्षत्रिय युवक संघ की प्रवृति के 6 प्रधान अंग हैं। 1. भावना, 2. साधना, 3. इतिहास, 4. अभ्यास, 5. पवित्रता और 6. धैर्य। ऐतिहासिक अनुभव की खाद, अभ्यास जल का सिंचन फिर पवित्रता का ताप। जीवन में सच्चाई, नीति और पवित्रता होना आवश्यक है। पवित्रता प्राप्त करने का मार्ग है तप। फिर निरन्तरता (सातत्य) की वायु और धैर्य की सुरक्षा की जाती है। किसी भी कार्य की सफलता के लिये सातत्य और धैर्य आवश्यक है। अधैर्य से फल प्राप्ति नहीं होती है।

धीरे धीरे रे मना, धीरे सब कुछ होय।
माली सींचे सौ घड़ा, रितु आए फल होय।।

फल प्राप्ति के लिए धैर्य आवश्यक है। यह साधना सामाजिक है। समाज को पतन अवस्था से उन्नत अवस्था में ले जाना है। बहुत ऊँचे पहुँचाना है। उसके लिए धैर्य और तप अति आवश्यक है। पू. तनसिंहजी शिविरों में कहा करते थे,-'यह प्रवृति कोई चमत्कार और जादू का खेल नहीं है।' यह तो वर्षों तक तपस्या करने का क्षेत्र है। इसका फल तो पाँच पीढ़ियों के बाद मिलेगा। जिस व्यक्ति में इतना धैर्य हो, वही इस मार्ग पर चल सकता है। दो पीढ़ियों से यह कार्य चल रहा है, तीसरी पीढ़ी का प्रवेश हो चुका है। कार्य का विकास देखते हुए लगता है, पाँचवीं पीढ़ी में फल नजर आने लगेगा। ऐसा विश्वास होता है।

साधक ने ठीक ही कहा है-भावना की उर्वरा भूमि में साधना के पौधे का बीजारोपण कर, उसमें ऐतिहासिक अनुभव का खाद्य, अभ्यास का जल, पवित्रता की धूप, निरंतरता की वायु और धैर्य का संरक्षण देकर वैज्ञानिक, मनोवैज्ञानिक तथा परीक्षित एवं संस्कारिक प्रक्रिया से ही यह सम्भव है। क्षत्रिय युवक संघ में इन चारों प्रणालियों को समाविष्ट किया गया है। अन्त में साधक कहता है,- 'अवैज्ञानिक और अव्यवस्थित प्रयास असफलता प्राप्ति का सरलतम साधन है।'

हमारे समाज में बहुत सी प्रवृतियाँ असफल रही हैं। इसका प्रधान कारण है अवैज्ञानिक और अव्यवस्थित कार्य प्रणाली। हम लोग क्षत्रिय युवक संघ को समझें, उसको स्वीकार करें, सक्रिय बनें तो पाँच की जगह चौथी पीढ़ी में फल प्राप्त कर सकें। ऐसे पुरुषार्थ के लिए प्रभु हमें बल दे।
अर्क- पुरुषार्थ सफलता का प्रथम सोपान है।

अवतरण-60

साधक के पाँच शत्रु बड़े भयानक होते हैं, जो पाँच प्रलोभनों के प्रति आसक्ति उत्पन्न कराकर उसे सदैव साधना-भ्रष्ट कराने में रत रहते हैं। वे पाँच शत्रु हैं साधक की ज्ञानेन्द्रियाँ और पाँच प्रलोभन हैं-रूप, रस, राग, गंध और स्पर्श। इनके प्रति आसक्ति का प्राकृतिक रूप से शमनऔर दमन मेरी साधना के अंग हैं,-गोपन नहीं। कारण कि गोपन के आवरण के नीचे आसक्ति और भी पुष्ट और सबल बनकर अवसर आने पर सब मर्यादा बंधनों को तोड़ बैठती है।

साधक इस अवतरण में पाँच महा रिपुओं की बात करता है। ये पाँच रिपु साधक की साधना भ्रष्ट करने को तत्पर रहते हैं। ये पाँच रिपु हैं- रूप, रस, शब्द, स्पर्श और गंध। ये पाँच रिपु पाँच इन्द्रियों के विषय हैं। ये इन्द्रियों के विषय इस प्रकार हैं- आँख का विषय है रूप, जिह्वा का विषय है स्वाद, कान का विषय है शब्द, त्वचा का विषय है स्पर्श और नाक का विषय है गंध। ये इन्द्रियाँ अपने-अपने विषय में प्रवृत रहती हैं और ऐसा होना स्वाभाविक भी है। अगर ऐसा होना अर्थात् इन्द्रियों का अपने-अपने विषय में लिप्त होना स्वाभाविक है तो फिर उन्हें रिपु क्यों कहा जाए? यदि ये इन्द्रियाँ अपने-अपने विषय को छोड़ दे तो क्या जीवन सम्भव है? सामान्य रूप से विचार करने पर यह स्वाभाविक और प्राकृतिक ही लगता है। तो फिर इन्हें महा रिपु क्यों कहा गया है?

साधना के क्षेत्र में ये बाधक हैं, इसका अर्थ यह

नहीं है कि आँख देखना बन्द कर दे, नाक सूंघ सुनना और जीभ खाना बन्द कर दे। परन्तु इन इन्द्रियों अपने-अपने विषय में सहज भाव से रहने की बजाए जब उनमें आसक्ति आ जाए तो वह बाधक है। आसक्ति के कारण साधक अपनी साधना छोड़ दे अथवा शिथिल कर दे, यह बाधा है। अपना साध्य, अपना लक्ष्य भूलकर इन इन्द्रियों के विषय में भटक जाए, यह साधना-भ्रष्ट होना है। साधना चाहे आध्यात्मिक क्षेत्र की हो, चाहे सामाजिक क्षेत्र की, अथवा राजकीय क्षेत्र की भी क्यों न हो, ये पाँच महा रिपु अर्थात् इन पाँच में से किसी भी एक विषय में आसक्त होना साधना पथ से भ्रष्ट होना है। आध्यात्मिक क्षेत्र और राजकीय क्षेत्र के ऐसे साधना पथ से भ्रष्ट होने वालों के अनेक उदाहरण इतिहास में मिलते हैं। यहाँ एक उदाहरण प्रस्तुत करता हूँ। इतिहास प्रसिद्ध घटना है। महाराज श्री पृथ्वीराज चौहान राजसत्ता के साधक थे। महा पराक्रमी और साहसी वीर थे। किन्तु जब संयोगिता के रूप में आसक्त हो गये तो अपने कर्तव्य से भ्रष्ट होकर पराजित हुए। जब तक ये इन्द्रियाँ अपने प्राकृतिक रूप से काम करती हैं तब तक सब ठीक है परन्तु मानव जब आसक्त होकर किसी इन्द्रिय विषय में लिप्त हो जाता है तब पतन निश्चित है।

साधक कहता है कि रूप, रस, स्वाद, गंध, शब्द, स्पर्श इत्यादि का 'शमन' और 'दमन' साधना का अंग है। इनका 'गोपन' नहीं। मेरी साधना का मतलब है क्षत्रिय युवक संघ की प्रवृत्तियाँ। इन प्रवृत्तियों में विषयों का 'शमन' और 'दमन' महत्त्व का अंग है। भोग-लिप्सा, निर्बाध आसक्ति और स्वच्छन्दता से साधक का पतन होता है और साधना निष्फल होती है। अत: क्षत्रिय युवक संघ की प्रवृत्ति में अनुशासन और व्यक्ति की न्यूनतम आवश्यकताओं के अभ्यास पर विशेष ध्यान दिया जाता है। चर्चा व प्रवचनों में तो इसे विस्तार से समझाया ही जाता है लेकिन यह तो प्रत्यक्ष दर्शन और अनुभव का विषय है अत: अभ्यास आवश्यक है।

यदि इन्द्रिय संयम न हो, शमन-दमन न हो और केवल गोपन अर्थात् संयम की बातें और संयम का दिखावा ही हो तो अवसर आने पर, परिस्थिति की अनुकूलता होने पर मर्यादा टूट जाती है, संयम का बन्धन टूट कर साधक विषय में फँस जाता है।

संयम और मर्यादा क्षत्रिय युवक संघ की साधना का अंग है। संघ की प्रवृतियों में संयम और मर्यादा का पालन किया जाता है। शिविरों में इसकी विधिवत शिक्षा दी जाती है। वैज्ञानिक और मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों के आधार पर शिक्षा दी जाती है, इतना ही नहीं, उसका सूक्ष्मता पूर्वक निरीक्षण एवं परीक्षण भी किया जाता है।

ऐसा नहीं है कि क्षत्रिय युवक संघ की प्रवृत्तियाँ केवल क्षत्रियों के लिये ही उपयोगी हैं; यह तो समस्त मानव जाति के लिए उपयोगी तथा उपकारी हैं। यह बात तब समझ में आ सकती है जब हमें इसका मार्ग समझ में आए। हमारी बदकिस्मती यह है कि ऐसी श्रेष्ठ और उमदा प्रवृति की ओर गंभीरतापूर्वक देखने की, समझने की हमें आवश्यकता महसूस नहीं होती है।

इस प्रवृति को गहराई से, गंभीरतापूर्वक देखने की, समझने की, अपने समाज को दृष्टि एवं शक्ति प्राप्त हो, यही परमेश्वर से हमारी प्रार्थना है।

अर्क- जीवन की सफलता की नींव है संयम।

चिंतन मोती- ईर्ष्या, घृणा, असंतोष, क्रोध, शंका और पराश्रित जीवन जीने वाले को सदैव दुख की ही अनुभूति होती है। **(क्रमश:)**

लक्ष्य, योजना और आत्म विश्वास, साधना के तीन अंगों का जब मेल होता है, तो दरिद्रता बहुत काल तक उसी तरह नहीं टिक पाती, जिस प्रकार पोषण न प्राप्त करने के कारण शरदऋतु के बादल बहुत देर तक निर्मल आकाश में नहीं टिक पाते।

- जयवंतराम

गतांक से आगे

भारतीय संस्कृति के प्राण मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम

– स्वामी धर्मबन्धु

(च) ग्रीक साम्राज्य के महान दार्शनिक और सिकन्दर महान के गुरु अरस्तू के अनुसार राज्य व्यवस्था का दिग्दर्शन :– The state is a community of persons. Every community has a certain purpose and that purpose is good. As a community the State has a purpose and that purpose is also good. Aristotle has analyzed the nature of State by dividing it into severaal components. But the State is not an ordinary community. It is the highest of all communities and naturally its purpose shall be the highest and supreme. The State is an association. But its purpose is different from that of other associations. Again it is not an ordinary association. It enjoys the highest rank or position in the society or social structure.

We are accustomed to analyse other composite things till they can be subdivided no further., let us in the same way examine the state and its components. Ths State is natural or exists by nature.

In applying natural methods we find an application of Physic and Nomos. Physic implies growth, nature and fundamental reality. Nomos is man made, convention and custom. State is characterized by natural growth. But during its dirrerent stages of progress, man made laws and conventions have intervened.

Greek word KOINONIA means both community and association. Man by nature is a self seeking animal and he dose not hesitate to oppose others interests. So the law justice Institutions and conventions which are made by man may be evil. Aristotle differs. He opines that law and conventions are basically good and man has made them to serve their beneficial objectives. To sum up, State has developed naturally. It must not be treated as a result on contract or human connivance. Men have made laws, institutions and conventions for their own benefit and these have facilitated and enriched the functioning of State.

If state is a natural development there are definitely several stages. First stage is household. Union between male and female constitutes the basis of a family. Union is essential for reproduction since each is powerless without the other. Not a matter of choice but result of desire planted by nature. Family includes slave, Ox and plough. Without these family cannot maintain its own physical existence. Association of persons established according to the law of nature and continuing the household.

Household simplest form of association and meets simplest necessities. But mans necessities are many and it is beyond the capacity of the family to meet those demands. Several families form a village to fulfill the greater demands and needs. It happens through process of nature. The village though higher than household cannot cope with the demands of members.

Several villages join to give rise to POLIS or State. Final association formed of several villages is the City of State. From practical view the process is complete, self sufficiency reached and in a position to secure good life. Common interests a factor. Good life desired end State. For good life exercise of both ethical and intellectual virtues is essential. Necessities of external goods arise. For this State needs size and population.

Man by nature is political animal. Nature inspired man to be part of State. To be a political

animal nature has given man power of speech and good qualities. Political animal means man is reasonable and with power of reason can distinguish between good or bad, right or wrong, just or unjust. Reasonablity is key. It enables man to form organisation and good purpose of life.

Character of State. Organic and compounded whole.

State has several parts and not aggregate of individuals. Members relate to each other because they inhabit same territory. When individuals form a whole they share joint activities and lose their seprateness. If parts reparated from the whole they will be useless. This is the organic theory of State. City or State has priority over household and individual. Membership of State makes a person self sufficient and helps him fulfill his ambition and also be moral and virtuous. Important characteristic of man. Although man part of whole he maintains his identity.

Differs from Platos ideas of Communism which advocates doing away with differences. Aristotle does not think by doing away with differences the State will be a complete whole Individual and State. State has priority over family or Individual. Individuals will not have separate ideal, morality and goodness from State. He can have these qualities by being part of State. He cannot have rights apart from the State or against the State. Without being part of State individuals cannot achieve their moral and ethical objectives. State is highest manifestaion of mortality, ideal, ethics and values.

अर्थात् – राज्य व्यक्तियों का एक समुदाय है। प्रत्येक समुदाय का एक निश्चित उद्देश्य होता है और वह उद्देश्य अच्छा है। एक समुदाय के रूप में राज्य का भी एक उद्देश्य है और वह उद्देश्य भी अच्छा है। अरस्तू ने इसे अनेक घटकों में विभाजित करके राज्य की प्रकृति का विश्लेषण किया है। लेकिन राज्य एक साधारण समुदाय नहीं है। वह सभी समुदायों में सबसे ऊंचा है और स्वभावत: इसका उद्देश्य भी सर्वोच्च तथा परम होगा। राज्य भी एक संघ है परन्तु इसका उद्देश्य अन्य संगठनों से भिन्न होता है। राज्य समाज या सामाजिक संरचना में सर्वोच्च स्थान व दर्जा प्राप्त करता है।

हम अन्य मिश्रित वस्तुओं का विश्लेषण करने के आदी हैं, और तब तक विश्लेषण करते हैं जब तक उन्हें आगे विभाजित नहीं कर सकते। ठीक इसी प्रकार हम राज्य और उसके घटकों की भी जाँच करें। राज्य का होना स्वाभाविक है या प्रकृति के कारण मौजूद है।

प्राकृतिक विधियों के प्रयोग में हमें भौतिक विज्ञान तथा नोमो यानी संगठन के अनुप्रयोग का पता चलता है। भौतिक विकास, प्रकृति और मौलिक वास्तविकता का अर्थ है। नोमो अथवा मानव निर्मित सम्मेलन और उसकी प्रथा है। राज्य की विशेषता स्वाभाविक विकास है, लेकिन प्रगति की अपनी विभिन्न अवस्थाओं में मानव निर्मित विधियों और परम्पराओं ने व्यवधान डाला है।

ग्रीक शब्द कोइनोनिया का अर्थ समुदाय और संघ दोनों है। स्वभाव से मनुष्य एक स्वार्थी पशु की भाँति है और वह दूसरों के हितों का विरोध करने में संकोच नहीं करता। इसलिए कानून न्याय, संस्थाएँ और रूढ़ियाँ जो मनुष्य द्वारा बनाई गई हैं, वह गलत हो सकती हैं। परन्तु अरस्तू इस विचार से सहमत नहीं है, उन्होंने कहा कि कानून और रूढ़ियां मूल रूप से अच्छी है और मनुष्य ने उन्हें अपने लाभकारी उद्देश्यों की पूर्ति के लिये बनाया है। इस तथ्य का समर्थन करते हुए वे कहते हैं, राज्य का विकास स्वाभाविक रूप से हुआ है। इसे अनुबंध या मानव के स्वार्थी रूप के परिणामस्वरूप नहीं माना जाना चाहिए। मानव ने स्वयं के लाभ के लिए कानून, संस्थान और सम्मेलन बनाए हैं और इन्हीं से राज्य के कामकाज को सुगम और समृद्ध बनाया गया है।

यदि राज्य एक स्वाभाविक विकास है तो निश्चित रूप से इसके कई चरण हैं। प्रथम चरण घर है, जिसमें पुरुष और महिला के बीच के संघ से एक परिवार का आधार बनता है। संघ का होना समाज को आगे बढ़ाने के लिये आवश्यक है क्योंकि दोनों एक दूसरे के बिना

शक्तिहीन हैं। यहाँ किसी की अपनी पसंद का सवाल नहीं आता है बल्कि प्राकृतिक स्वभाव से रोपित इच्छा का परिणाम है। परिवार में दास, बैल और हल शामिल हैं। इनके बिना परिवार का अपना भौतिक अस्तित्व नहीं बना रह सकता है। व्यक्तियों के सम्बन्धों को प्रकृति के नियम के अनुसार स्थापित और जारी रखना ही गृहस्थी है।

संघ घरेलू सामान का सरलतम रूप एवं सभी सरल की आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। परन्तु मनुष्य आवश्यकताएँ अधिक हैं और उन माँगों को पूरा करने के लिए परिवार की क्षमता से परे है। कई परिवार अपनी-अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए एक गाँव का निर्माण करते हैं। यह प्रकृति की प्रक्रिया के माध्यम से होता है। गाँव यद्यपि परिवार से ऊँचा है परन्तु वह सदस्यों की माँगों का सामना नहीं कर सकता। इनमें से कई गाँव पुलिस या राज्य को जन्म देने के लिए शामिल होते हैं। अनेक गाँवों का अन्तिम संगठन शहर या राज्य होता है। व्यावहारिक दृष्टि से यह प्रक्रिया पूर्ण होती है, जिसको आत्मनिर्भरता प्राप्त होती है और अच्छे जीवन को प्राप्त करने की स्थिति में होती है। समान इच्छा होना इसका एक कारक है। राज्य के भीतर एक अच्छा जीवन वांछनीय है। एक अच्छे जीवन के लिए बौद्धिक तथा न्यायिक प्रक्रिया का होना आवश्यक है। बाहरी वस्तुओं की आवश्यकताएँ पैदा होती हैं और इसके लिए राज्य में वृहद आकार और आबादी की आवश्यकता है।

स्वभाव से मनुष्य राजनीतिक पशु है। प्रकृति ने मनुष्य को राज्य का हिस्सा बनने के लिए मनुष्य को भाषण और अच्छे गुणों की शक्ति दी गई है। राजनैतिक पशु का अर्थ है कि मनुष्य तर्कसंगत है और विवेक शक्ति के कारण अच्छे या बुरे, सही या गलत, न्यायसंगत या अन्याय में भेद कर सकता है। तर्कसंगतता महत्त्वपूर्ण है क्योंकि यह मनुष्य को संगठन बनाने और जीवन को एक अच्छा उद्देश्य प्रदान करता है।

राज्य का चरित्र जैविक और मिश्रित होता है।

राज्य के कई भाग होते हैं और यह सिर्फ व्यक्तियों का समुच्चय नहीं है। एक ही क्षेत्र में रहने के कारण व्यक्ति एक दूसरे से सम्बन्धित है। जब व्यक्ति एक संपूर्ण राज्य बनाते हैं तो वे संयुक्त गतिविधियों को साझा करते हैं और अपनी पृथकता खो देते हैं। यदि राज्य के भागों को संपूर्णता से अलग कर दिया जाए तो वे बेकार हो जाएँगे, यही राज्य का जैविक सिद्धान्त है। शहर या राज्य की प्राथमिकता घरेलू और व्यक्तिगत होती है। राज्य की सदस्यता किसी व्यक्ति को आत्मनिर्भर बनाती है और उसकी महत्त्वाकांक्षा को पूरा करने में मदद करती है साथ ही साथ नैतिक और सदाचारी भी होती है। मनुष्य के प्रकृति की महत्त्वपूर्ण विशेषता भी होती है। हालाँकि मनुष्य अपनी पहचान भी बनाए रखता है।

अरस्तू के विचार प्लेटो के साम्यवाद के विचारों से अलग है, जो विभिन्न मतभेदों को दूर करने की वकालत करता है। अरस्तू का यह विचार नहीं है कि अन्तर को दूर करके राज्य एक संपूर्ण व्यक्ति या राज्य बन जाएगा। परिवार या व्यक्ति पर राज्य की प्राथमिकता सदैव रहेगी। राज्य की ओर से व्यक्तियों को भिन्न-भिन्न आदर्श, नैतिकता और अच्छाई प्राप्त नहीं होगी। वह राज्य का हिस्सा बनकर ही इन गुणों को प्राप्त कर सकता है। उसे राज्य से अलग या राज्य के खिलाफ अधिकार नहीं मिल सकता। राज्य का हिस्सा बने बिना व्यक्ति के द्वारा नैतिक तथा नैतिक उद्देश्यों की पूर्ति नहीं की जा सकती। अतः राज्य मृत्यु दर, आदर्श, नैतिकता और मूल्यों की उच्चतम अभिव्यक्ति है।

(छ) अमेरिका के प्रथम राष्ट्रपति जॉर्ज वाशिंगटन के अनुसार राज्य व्यवस्था।

Washington stood for national freedom, individual liberties and a strong central government that would serve to protect the freedoms and liberties of its citizens. Also, he believed in the complete separation of Church and State. People should only change the constitution through amendments, but warns them that groups seeking to overthrow the goverment may strive to pass

constitutional amendment to weaken the goverment to a point where it is unable to defend itself from political factions, enforce its laws. A capable federal government was the proper fulfillment of the American Revolution and the means by which American independence would endure.

If freedom of speech is taken away, then dumb and silent we may be led like sheep to slaughter.

www.mountvernon.org

अर्थात् वाशिंगटन राष्ट्रीय स्वतंत्रता, व्यक्तिगत स्वतंत्रता और एक मजबूत केन्द्र सरकार के लिये खड़ा था, जो अपने नागरिकों की स्वतंत्रता और उनकी स्वतंत्रता की रक्षा के लिए तत्पर था। इसके अतिरिक्त वह चर्च और राज्य के पूर्णरूपेण से विभाजन में विश्वास करता था। लोगों को केवल संशोधनों के माध्यम से संविधान में परिवर्तन करना चाहिए, लेकिन उन्हें चेतावनी भी दी कि सरकार को उखाड़ फेंकने की मांग करने वाले समूह, सरकार को एक ऐसे बिन्दु पर कमजोर करने के लिए संवैधानिक संशोधन पारित करने का प्रयास कर सकते हैं जहाँ वह राजनीतिक गुटों से खुद को बचाने में असमर्थ है, ऐसे लोग अपने कानूनों को लागू करते हैं। एक सक्षम संघीय सरकार अमेरिकी क्रांति की पर्याप्त पूर्ति थी और इसके माध्यम से अमेरिकी स्वतंत्रता को प्राप्त किया था।

यदि व्यक्ति से बोलने की आजादी छीन ली जाती है, तो वह गूंगा और खामोश हो सकता है, ऐसी परिस्थितियों में हमें भेड़-बकरियों की तरह पाला-पोसा जाएगा।

(ज) राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी राम राज्य के विषय में अपने विचार इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं। Mohandas Karamchand Gandhi :- Ram Rajya does not mean Hindu Raj. Hinduism teaches us to respect all religions. In this lies the secret of Ram Rajya (RR). Ram Rajya means Divine Raj, The Kingdom of God, sovereignty of people based on pure moral authority. Ram Rajya of Gandhi's dream ensure equal rights to Prince and pauper. For me Ram and Rahim are one and the same deity. I acknowledge no other God but the one God of truth and righteousness. Whether Rama of my imagination ever lived or not on the earth, the ancient ideal of Ramayana is undoubtedly one of true democracy in which the meanest citizen could be sure of swift justice without an elaborate and costly procedure. Even the dog is described by the poet to have received justice under RR. Y1, 199 1929 p305. If you want to see GOD in the form of RR, the first requisite is self introspection. You have to magnify your own faults a thousand fold and shut you eyes to the faults of your neighbours. This is the only way to real progress. RR envisages a society in which virtur, morality and justice are the core ideals around which day to day interactions between citizen and citizen and state and citizen occur.

मोहनदास करमचंद गाँधी : राम राज्य से सीधा तात्पर्य हिन्दू राज से नहीं है। हिन्दू धर्म हमें सभी धर्मों का सम्मान करना सिखाता है और इन्हीं सिद्धान्तों को रामराज्य में भी समाहित किया गया है। रामराज्य के रहस्य का अर्थ है दिव्य राज, ईश्वर का साम्राज्य तथा शुद्ध नैतिक अधिकारों के आधार पर जनता की संप्रभुता तथा साम्राज्य। गाँधीजी के स्वप्न का रामराज्य राजकुमार और गरीब (दीन) को समान अधिकार सुनिश्चित करता है। ''मेरे लिए राम और रहीम दोनों एक हैं। मैं सत्य और धर्म के अलावा किसी और भगवान को नहीं मानता। मैं नहीं जानता कि मेरी कल्पना का राम कभी धरती पर रहा या नहीं, परन्तु रामायण का प्राचीन आदर्श निसंदेह वास्तविक लोकतंत्र में से एक है, जिसमें गरीब से गरीब नागरिक को एक विस्तृत और कीमती प्रक्रिया के बिना जल्दी से जल्दी न्याय मिल जाता था।'' यहाँ तक कि कवियों द्वारा यह भी वर्णित किया गया है कि रामराज्य के अंतर्गत जानवरों को भी न्याय प्राप्त होता है। यदि आप रामराज्य के तहत ईश्वर को देखना चाहते हैं, तो पहली आवश्यकता स्वयं का आत्मनिरीक्षण है। आप अपने स्वयं के दोषों को बिना

संकोच के देखो और अत्यधिक सामर्थ्य के साथ उसे सुधारो इस बीच दूसरे की गलतियों के प्रति उपेक्षा रखो।

यह वास्तविक प्रगति का एकमात्र तरीका है। रामराज्य एक ऐसे समाज की परिकल्पना करता है जिसमें सदाचार, नैतिकता और न्याय मुख्य आदर्श है और जिसके अंतर्गत नागरिक तथा राज्य के मध्य प्रतिदिन वार्तालाप होता है।

रामराज्य के अंतर्गत कोई भय नहीं, कोई व्यक्ति भूखा नहीं होगा तथा किसी भी प्रकार का भेदभाव नहीं होगा। राम निष्ठा, सिद्धान्त, जनता की सुनने वाले तथा आज्ञाकारिता के प्रतीक हैं।

समस्याओं के समाधानों के लिये नए कानून की नहीं बल्कि मानसिकता में बदलाव की आवश्यकता है।

(झ) **निष्कर्ष :–** अत: हमारे बुद्धि और विवेक के अनुसार उपर्युक्त तथ्यों का निष्कर्ष यह है कि समस्त प्राणियों के हितकल्याण और सुख समृद्धि के प्रयोजन के लिये श्रेष्ठ राज्य यानी रामराज्य का होना नितान्त आवश्यक है। जिस राज्य व्यवस्था के अंतर्गत धर्म, सत्य, न्याय, प्रेम, करुणा तथा दण्ड का शासन, ज्ञान, उदारता और कल्याण के द्वारा अज्ञान, अन्याय, अभाव और अराजकता को मिटाने के लिये हो। जिसके माध्यम से राज्य में सुख, शान्ति, अहिंसा, संतोष, करुणा, प्रेम उदारता, प्रगतिशीलता, बुद्धि विवेक और विशुद्ध ज्ञान का साम्राज्य प्रस्थापित हो सके। शासन व्यवस्था यह सुनिश्चित करने का प्रयत्न करे कि राज्य में रात्रि में कोई भी नागरिक भूखा नहीं सोएगा। इसका तात्पर्य यह है कि भोजन, वस्त्र, आवास, शिक्षा, चिकित्सा और सुरक्षा इत्यादि का उचित प्रबन्ध हो। अर्थात् राज्य में शोषण भ्रष्टाचार रिश्वत के साथ-साथ जाति धर्म-सम्प्रदाय, गरीब-अमीर, स्त्री-पुरुष, रंग-नस्ल के आधार पर भेदभाव के लिये कोई स्थान न हो। क्योंकि जब नागरिकों में भेदभाव पनपने लगता है-तो भेद से भय उत्पन्न होता है, भय के कारण उनके मन में द्वेष से घृणा-नफरत की भावना प्रबल हो जाती है जिससे हिंसा का प्रादुर्भाव होता है, जिसके कारण अराजकता फैलती है। इसलिए सभी नागरिकों के लिये समान अधिकार और उनके लिये उचित न्याय-व्यवस्था का प्रावधान हो। राज्य की सर्वोन्मुखी प्रगति के लिये हिंसा, अविश्वास, धार्मिक उन्माद और पर्यावरण क्षरण की रोकथाम के लिये उचित प्रबन्ध हों। शासक यह निरंतर ध्यान रखे कि नागरिकों को अपने अधिकारों के लिये आंदोलित न होना पड़े। इसलिए वह अपने कर्तव्यों के प्रति जागरूक एवं सावधान रहे और वह नागरिकों के लिये भौतिक एवं आध्यात्मिक उन्नति तथा कर्तव्यनिष्ठता का मार्ग प्रशस्त करे।

शासक का उत्तरदायित्व ही नहीं अपितु उसका परम् कर्तव्य यह है कि नागरिकों के मन एवं मस्तिष्क में निर्भयता, आंतरिक और बाहरी शुद्धता का भाव, तप, संयम, ज्ञान, सहयोग, उदारता, सरलता, आत्मचिंतन, अहिंसा, सत्यता, अक्रोध, त्याग, शान्ति, संतोष दूसरों के प्रति करुणा, प्रेम, तेज, क्षमा, धैर्य, विनम्रता, दोषारोपण का अभाव इत्यादि दिव्य गुण उत्पन्न करने के लिये संस्कार युक्त शिक्षा का समुचित प्रबंध करे। जिसके माध्यम से राज्य के नागरिकों के हृदय एवं मस्तिष्क में नियम व्यवस्था यानी संविधान के प्रति आदर उत्पन्न हो, वे नैतिकता आधारित जीवनशैली को धारण करें तथा स्वयं अनुशासित होकर, राष्ट्र के प्रति प्रेम करें। अपनी उन्नति के लिये स्वयं के कार्य के प्रति जुनून तथा अपने साथ ही प्रतिस्पर्धा करे, शरीर, मन, वातावरण तथा भावना को पवित्र रखते हुए अपने माता-पिता और अध्यापक का सम्मान करें। इसके अतिरिक्त सतत् शोध की प्रक्रिया में संलग्न रहकर ज्ञान का विस्तार करें और टेक्नोलॉजी का समुचित प्रयोग करें। आधुनिक युग के तथाकथित बुद्धिजीवी वर्ग को धर्म शब्द से आपत्ति हो सकती है। इन लोगों की यह आपत्ति होती है कि राजनीति में धर्म का प्रभाव नहीं होना चाहिये। उन लोगों की ऐसी मानसिकता के कारण धर्म का वास्तविक स्वरूप और उसकी व्यापकता की समझ न होना है। धर्म का तात्पर्य कर्तव्यनिष्ठता है न कि विभिन्न पूजा पद्धति और मत

मतान्तर या सम्प्रदाय है। धर्म का तात्पर्य यह है कि-जिस कार्य को करने से अत्यधिक सुख की प्राप्ति हो वही धर्म है। पक्षपात न करना, सभी के प्रति न्याय करना और सत्य का अनुसरण करना ही धर्म है। अत: हमारे मत के अनुसार राजनीति में धर्म होना चाहिए परन्तु धर्म में राजनीति नहीं होनी चाहिए। धर्म, त्याग, तपस्या, बलिदान, संयम और सत्यता इत्यादि को प्रोत्साहित करता है। यही कारण है कि भारतवर्ष में त्यागी, तपस्वियों का स्थान उनके नैतिक गुणों के कारण राजा, महाराजा और शासकों से श्रेष्ठ होता है। देश की राज्य व्यवस्था का संचालन त्यागी तपस्वियों के निर्देशन में ही होता था। इन महापुरुषों में राज्य के निर्माण की क्षमता होती थी और वे आदर्श राज्य व्यवस्था का अनुपम उदाहरण प्रस्तुत करते थे। जैसे-आचार्य चाणक्य ने मौर्य साम्राज्य की स्थापना की, विद्यारण्व स्वामी ने विजयनगरम और समर्थ रामदास ने मराठा साम्राज्य की नींव रखी थी इसी प्रकार आधुनिक भारतवर्ष महात्मा गाँधी का आभारी है। इन त्यागी तपस्वियों का स्थान शासकों से श्रेष्ठ है। समस्त तथ्यों के विश्लेषण का हमारा उद्देश्य यह है कि-प्राचीन शासन प्रणाली में राज्य का आधार राजा होता था इसलिए यह परम्परा प्रचलित थी जैसा राजा वैसी ही उसकी प्रजा। अर्थात् प्रजा के जीवन शैली के निर्माण तथा राज्य की सुरक्षा का उत्तरदायित्व राजा का होता था। परन्तु वर्तमान शासन प्रणाली की व्यवस्था लोकतांत्रिक है। लोकतंत्र में जिस प्रकार के नागरिक होंगे उसी प्रकार का उनका शासक होगा। अत: इस लोकतंत्र में राष्ट्र और उसकी सुरक्षा के प्रति शासक से अधिक जिम्मेदारी नागरिक की है। इसी प्रकार के विचार एवं सिद्धान्त ग्रीक दार्शनिक प्लेटो के भी हैं (Greek philosopher Plato) : If you do not take an interest in the affairs of your government, then you are doomed live under the rule of fools. यदि आप अपनी सरकार के क्रियाकलापों (मामलों) में रुचि नहीं लेते हैं, तो आप मूर्खों के शासन में रहते हैं। इसलिए उसे अपने नैतिक कर्तव्य तथा जीवनशैली के निर्माण के लिये राम राज्य के आदर्शों का अनुसरण उसके लिये नितान्त आवश्यक है। रामराज्य का मुख्य उद्देश्य यह है कि राजा का शासन प्रजा पर हो और प्रजा का शासन राजा पर हो। अर्थात् शासक और नागरिक के संबंध में आत्मीयता हो।

अंतत: हम इन अथर्ववेद के वचनों के साथ अपनी लेखनी को विराम देते हैं।

यां रक्षन्त्यस्वप्न विश्वदानीं
देवा भूमिं पृथिवीमप्रमादम्।
सा नो मधु प्रियं
दुहामथो उक्षतु वर्चसा।। 12/1/7

प्रत्येक नागरिक को अपने कर्तव्यों को ध्यान में रखकर इस देवभूमि के लिये सतत् कार्य करना है। वह राष्ट्र व वहाँ के नागरिक अपनी आजादी खो देते हैं जहाँ की प्रजा आलसी व सुस्त होती है।

❐

महापुरुष कभी उन लोगों की भाँति नहीं थे, जो अपने आपको समाज के अनुकूल बनाकर सुख-सुविधा और यश के लिए जीवित रहे हों, बल्कि वे अकेले खड़े रहते थे और अपनी कर्म कुशल तेजस्विता से अपनी ओर पूरे समाज को खींच लेते थे। उन्हें यश और नाम की कभी परवाह नहीं थी पर पीछे वाले लोगों ने उन्हें केवल यश और नाम ही दिया है। महापुरुषों के अनुयायी उनके अनुकरण को जितना महत्त्व नहीं दे पाये, उतना उनके नाम और यश के लिए झगड़ते रहे हैं। उनके उपदेश, जो उनकी मुख्य बात थी, केवल किताबों में बन्द होकर आलमारियों में अटक गए।

– पू. तनसिंहजी

गतांक से आगे

महान क्रांतिकारी-राव गोपालसिंह खरवा

- ले. सुरजनसिंह झाझड़, संकलन व सम्पादन-डॉ. भंवरसिंह भगवानपुरा

प्राक्कथन-वंश परम्परा-जोधपुर के राठौड़- जोधपुर के राठौड़ अपनी बेजोड़ वीरता और रसालों के दिल-दहलाने वाले तूफानी आक्रमणों के लिए भारत विख्यात रहे हैं। तत्कालीन यूरोपीय सैन्य संचालकों ने उनके अदम्य साहस और अप्रतिम शौर्य की मुक्तकण्ठ से सराहना करते हुए उन्हें एक ऐसी सुप्रसिद्ध योद्धा जाति के प्रतिनिधि माना है, जिनके अतीत की उपलब्धियों ने उन्हें पूर्वीय देशों की लड़ाकू योद्धा जाति में सर्वश्रेष्ठ सिद्ध कर दिया।

European Military Adventures of Hindustan के लेखक एच-क्रॉम्पटन ने लिखा है- The Rathor's of Jodhpur were the very flowers of Rajput bravery and celebrated throughout Hindustan for their splendid courage and their handsome melce. Jhey were a warrier clan whose past aehivement had marked them out as the first and finest of all the fighting races of the east and won for them the proud distinction of being without fear.

जोधपुर के राठौड़ों के वीर पूर्वज राव चूण्डा ने प्रतिहारों की प्राचीन राजधानी मण्डोर (मण्डोवर) को मुस्लिम अधिकार से मुक्त करके अपना अधिकार स्थापित किया और अपने नव-स्थापित राज्य की राजधानी बनाया। उसके पौत्र और राव रणमल के पुत्र जोधा ने मण्डोर से कुछ दूर दक्षिण में भौगिशेलपर्वत शृंखला की एक चोटी पर जोधपुर दुर्ग का निर्माण कराकर नीचे अपने नाम पर जोधपुर नगर बसाया (वि.सं. 1515)।

राव जोधा के प्रतापी पुत्रों ने बीकानेर, छापर, द्रोणपुर और मेड़ता के तीन नये राज्यों की स्थापना की। बीकानेर का बीका द्रोणपुर का बीदा और मेड़ता का दूदा तीनों राव जोधा के पराक्रमी पुत्र थे। उनके वंशज क्रमश: बीका, बीदावत और मेड़तिया कहलाए। राव जोधा की मृत्युपरान्त उसके पुत्र सांतल और सूजा जोधपुर के शासक रहे। उनके वंशज जोधा कहलाए जो अद्यावधि जोधा उपटंक से पुकारे जाते हैं। राव जोधा से पाँचवीं पुश्त पर राव मालदेव जोधपुर का शासक बना। जो अपने कालखण्ड का अप्रतिम पराक्रमी शासक सिद्ध हुआ। राजस्थान के अधिकांश मरुस्थलीय प्रदशों पर एवं गिरि दुर्गों पर उसके विजय-ध्वज लहराने लगे। बीकानेर, द्रोणपुर और मेड़ता के स्वबन्धु राज्य भी उस विकराल ग्राह के मुख के ग्रास बन चुके थे। मुगल सम्राट हुमायू को भगाकर दिल्ली की सल्तनत हथियाने वाले पठान शेरशाह-सूर से टक्कर लेने वाला राव मालदेव ही था। अपने जीवन के समस्त युद्धों का विजेता मालदेव वि.सं. 1600 में सुमेल के इतिहास प्रसिद्ध युद्ध में शेरशाह की जालसाजी से धोखा खाकर पराजित हो गया। किन्तु शेरशाह ने भी उस भाग्य प्रदत्त विजय को ईश्वरीय कृपा मानते हुए कहा था-''खुदा का शुक्र है, जो फतह हासिल हो गई वरना एक मुट्ठी बाजरे के लिए हिन्दोस्तान की सल्तनत खो बैठता'' उसके शब्द थे-''बराए इक मुश्तई बाजरा सल्तनते हिन्दूस्तान रा बरबाद ददाह बुदेम''। ऐसे प्रतापी राव मालदेव की मृत्यु (वि.सं. 1619) पर उसके पुत्र पैतृक राज्य 'जोधपुर' की स्वतंत्रता की रक्षार्थ एक होकर संगठित नहीं रह सके ओर राज्य लिप्सा ने उन्हें असंगठित बनाकर बिखेर दिया। राव मालदेव का ज्येष्ठ पुत्र राम सोजत का परगना पाकर ही सन्तुष्ट हो गया। पिता का कृपापात्र पुत्र चन्द्रसेन जोधपुर की रक्षार्थ बादशाह अकबर से अनेक वर्षों तक युद्ध लड़ता हुआ विपद काल में ही काल का ग्रास बन गया। उसका पौत्र कर्मसेन उग्रसेणोत अजमेर के निकट भिणाय परगने का शासक बनकर बादशाही सेवा में चला गया। कर्मसेन के वंशज चन्द्रसेणोत जोधा कहलाते हैं। मालदेव का एक पुत्र रायमल सिवाने का भी शासक था। उसका पुत्र कल्ला (कल्याणदास) रायमलोत सिवाना दुर्ग की रक्षार्थ मुगल सेना से अद्वितीय

वीरता से लड़ता हुआ वीरगति को प्राप्त हुआ। उसके पौत्र केशरीसिंह से उसके वंशज (केशरीसिहोत) जोधा कहलाए। जो नागौर परगने के अधिकांश गाँवों के शासक थे।

इसी प्रकार राव मालदेव का द्वितीय पुत्र उदयसिंह जो मोटा राजा के नाम से इतिहास प्रसिद्ध है-सम्राट अकबर के पास चला गया। बादशाह ने वि.सं. 1640 में उसका पैतृक राज्य जोधपुर सौंपकर उसे राजा की पदवी से सम्मानित किया। राजा उदयसिंह के 12 पुत्र थे, जिनके वंशज उदयसिंहोत जोधा कहलाए। रतलाम, किशनगढ़, सीतामऊ, सैलाना, अमझेरा, खरवा, पीसांगन, जूनिया, गोविन्दगढ़, खैरवा,बाबरा आदि बड़े और छोटे राज्यों एवं ठिकानों के अधिकारी उदयसिंहोत जोधा रहे हैं। इसके बाद शूरसिंह जोधपुर के राजा बने जो कछवाही राणी के पुत्र थे, शूरसिंह एक वीर योद्धा थे। राव करण का पौत्र तेग और त्याग में अर्थात् वीरता और दातव्यता के लिए अति प्रसिद्ध था। उसकी पुत्री इन्द्रकुमारी का विवाह आमेर के राजा बिशनसिंह के साथ सम्मन्न हुआ था जिसके गर्भ से जयपुर नगर के महान निर्माता महाप्रतापी महाराज सवाई जयसिंह का जन्म हुआ था। राव काशीसिंह की दानव्यता के संदर्भ में केवल एक दोहा ही यहाँ उद्धत कर देना पर्याप्त होगा –

खरवा काशीसिंह नू तामो देण तलाक।
कैं तो सोनूं सोलवों के उछलता अेराक।।

तूंगा के इतिहास-प्रसिद्ध युद्ध (सन् 1787 ई.) में मराठों की पराजय के पश्चात् जोधपुर के महाराज विजयसिंह ने अजमेर को मराठों से छीन कर अपने अधिकार में ले लिया था। उक्त युद्ध के तीन वर्ष पश्चात् पाटण के युद्ध में विजयी होकर मराठा सेना ने अजमेर को पुन: अपने अधिकार में लेने हेतु आक्रमण किया और नगर को घेर लिया। तब राव सूरजमल ने मराठों से लड़ते हुए नगर की रक्षा की, तब वे तारागढ़ दुर्ग पर दुर्गाध्यक्ष के पद पर आरूढ़ थे। उपर्युक्त संपूर्ण ऐतिहासिक इतिवृत्त तथा उपलब्ध प्रमाणों के आधार पर लेखक द्वारा लिखित 'खरवा-का-इतिहास'' नामक ग्रंथ इतिहासप्रेमी पाठकों के लिये पठनीय है।

भंवर गोपालसिंह का जन्म – खरवा के शासकों के उसी यशस्वीं जोधा (राठौड़) कुल में राव सकतसिंह के चौदहवीं पीढ़ी में क्रान्ति के अग्रणी नेता राव गोपालसिंह-राष्ट्रवर का जन्म हुआ था। राव गोपालसिंह के शासनरूढ़ होने के समय भारतवर्ष पर ब्रिटिश साम्राज्य के प्रताप का सूर्य प्रखर किरणों के रूप में तप रहा था। विश्वभर में उनकी शक्ति-शामर्थ्य अपराजयी मानी जा रही थी। सन् 1857 ई. में अंग्रेजी शासन की पराधीनता से मुक्त होने के अर्थ भारतवासियों ने देशी सैनिकों की अगुवाई में अभूतपूर्व विद्रोह का संचालन किया था। परन्तु अंग्रेजों की कूटनीतिक चातुरी, योग्यता और सैनिक क्षमता एवं देशी नरेशों के एकमत न हो सकने के कारण वह स्वतंत्रता-युद्ध जिसे अंग्रेज शासकों ने सिपाही-विद्रोह की संज्ञा देकर उसमें निहित महत्त्व की उपेक्षा कर दी थी-विफल बना दिया गया। फिर भी भारतवासियों के हृदयों में प्रज्वलित विद्रोहाग्नि एवं गुलामी से मुक्त होने की प्रबल आकांक्षा का सर्वथा लोप नहीं हो गया था। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने उस क्रान्ति भावना की सुलगती चिंगारी को प्रज्वलित करने का कार्यारम्भ इस उद्घोष के साथ किया-''सुराज्य से स्वराज अच्छा है, चाहे उससे हमें कष्ट ही सहन करने पड़ें।'' उस विरक्त-वीतराग सन्यासी ने देश में सर्वत्र घूम-घूमकर देश प्रेम और स्वातंत्र्य भावना की अलख जगायी। भारत के वायसराय और गवर्नर जनरल लार्ड कर्जन ने बंग भंग के (सन् 1905 में) देश घातक कार्य की घोषणा करके उस विरोधाग्नि में घृताहुति का सा काम किया।

बंग भूमि से उठी हिंसक उग्र क्रान्ति की लहर समूचे उत्तरी भारत में तीव्र गति से फैलती चली गई। अंग्रेज-विरोधी भावना का गढ़ महाराष्ट्र तो पहले से ही ऐसी गतिविधियों का केन्द्र बना हुआ था। देशव्यापी क्रान्ति संघर्ष की उग्र विचारधारा से परिपूर्ण ऐसे ही वातावरण में राजस्थान के राजनीतिक रंगमंच पर राव गोपालसिंह खरवा का प्रादुर्भाव हुआ। ठा. केशरीसिंह बारहठ-शाहपुरा, अर्जुनलाल सेठी जयपुर और दामोदरदास

(शेष पृष्ठ 34 पर)

युग पुरुष

– स्व. भंवरसिंह कालवी

'दुविधा में दोनों गए, माया मिली न राम'– हमारा समाज ऐसे चौराहे पर खड़ा है जो किसी सही राह पर बढ चलने में असमर्थ है। रोजी-रोटी और सामाजिक व्यवस्थाएँ ही हमारे लिए इतनी विकराल है कि जिसकी परिधि पार करने में ही जीवन की अवधि समाप्त हो जाती है। इस विकट स्थिति में हमने बहुत कुछ खो दिया है और खोते जा रहे हैं। तदुपरान्त भी हमारी अहम् शक्ति इतनी प्रबल है कि किसी के द्वारा बताई गई उचित राह पर चलने में बाधा बनी रहती है। तभी तो हमारी जड़ता आज भी यथावत है। आज किसी सभ्रान्त परिवार के युवक के समक्ष क्षत्रिय शब्द को रखते हैं तो उसे किसी पशु की कल्पना होने लगती है। कहने का अर्थ है कि हम आज अपने धर्म, संस्कृति और इतिहास के प्रति उदासीन बनकर इनकी जानकारी से भी अनभिज्ञ हैं। यदि ऐसी ही स्थिति बनी रही तो एक दिन समाज संसार में श्रेष्ठतम समाज होने का स्वाभिमान खो बैठेगा।

ऐसे संक्रामक समय में पथभ्रष्ट समाज की राह प्रदर्शित करने के लिए महान आत्माएँ जन्म लेती आई हैं। हमारे बीच भी ऐसे युग पुरुष आए और चले भी गए। किसी ने उन्हें पहचाना, किसी ने पहचान कर भी आँख मूंद ली। लेकिन वे अपना कार्य करके ही गए, इसमें कोई शंका नहीं। वे जो हमारे लिए निधि छोड़कर गये उसमें हमारे खोये सम्मान को पुन: पा सकने की क्षमता है। उसमें युग-परिवर्तन के संकेत निहित हैं। सामाजिक भाव, समाज के प्रति पीड़ा और लगन ही उस निधि के वास्तविक भाव को समझने के लिये प्रेरित कर सकती है। ब्रह्मलीन संत चतुरभुज सहाय के कथानानुसार मृत आत्मा तीन लोक में निवास करती है। देव लोक में परमार्थ प्राप्त आत्मा ही निवास करती है, एक प्रकार से सुप्त अवस्था में रहती हैं। परमेश्वर किसी विशेष कार्य हेतु उन्हें पुनर्जन्म भी देता है। वे आत्माएँ संसार में अपना हेतु निभाकर चली जाती हैं। जैसे जगत गुरु शंकराचार्य बत्तीस वर्ष की अवस्था में ही अपना हेतु निभाकर संसार से चल बसे।

स्व. तनसिंहजी को एक देवदूत के नाम से सम्बोधित करने पर कुछ लोग भभक भी सकते हैं। लेकिन मैं अपने अनुभूत विचार प्रस्तुत करने के अधिकार के तहत उन्हें इसी रूप में प्रकट करना चाहता हूँ। मेरी बात को ठीक से समझने के लिये उनकी संस्कार संरचना पर दृष्टि डालनी होगी। उनकी नस-नस में, श्वासं-श्वांस में, हर धड़कन में क्षत्रियत्व का भाव त्वरित था। वे अपने मार्ग के दृढव्रतधारी थे। त्याग और तपस्या भी उनकी बेजोड़ थी। युग के विपरीत संस्कारों के विरुद्ध वे सुमेरू पर्वत बनकर जीवन पर्यन्त खड़े रहे।

सन् 1947 के बाड़मेर के अग्रणी वकील के घर की स्थिति की जरा आज कल्पना करें तो एक अत्यन्त समृद्ध घर की कल्पना ही हो सकती है। लेकिन उन्होंने तो अपनी सांसारिक समृद्धि, सुख, सुविधा का बलिदान कर दिया था। दीपक बनकर समाज को राह दिखाने के लिए तिल-तिल कर जलते रहकर अपना अस्तित्व मिटा दिया। अपने जीवन का एक भी दिन, अपनी शक्ति का एक भी अणु, अपने द्रव्य का एक भी पैसा, समाज के लिये कुछ भी तो छिपाकर नहीं रखा, इन्हें बलिदान की संज्ञा में ही तो लिया जा सकता है। जिनकी कथनी और करनी में तिल भर का भी अन्तर नहीं मिलता। उठाकर देखें झनकार को, जिसकी हर पंक्ति उनके जीवन में ढली नजर आती है।

हमारे इतिहास के हजारों पन्नों को उलटने पर हम दर्शन कर पाते हैं ऐसे पात्र का। अत: उनके महात्मा होने के स्पष्ट संकेत हैं। कोई कुण्ठा वश मेरी बात को स्वीकार नहीं कर सके, उसका मेरे पास कोई इलाज नहीं, पर अपनी बात प्रस्तुत करना मेरा दायित्व बनता है। अत: उन्हें 'युग पुरुष' के रूप में लिया जाना ही सच्चाई है, इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं।

समय-समय पर अनेक समाज सुधारकों से मिलन होता रहता है। उनमें कुछ लोग समाज की आर्थिक स्थिति से पीड़ित होते हैं, कुछ लोग समाज के राजनैतिक पिछड़ेपन से पीड़ित हैं, कुछ लोग समाज में शिक्षा की कमी से तो कुछ लोग सामाजिक कुरीतियों से पीड़ित होते हैं। उनकी तरफ से इन कमियों को दूर करने के लिये ऊर्जा खर्च की जाती है पर परिणाम देख सकने को नहीं मिले। स्व. तनसिंहजी ने इन सभी कमियों, बुराइयों की जड़ हमारे बिगड़े संस्कारों को माना है। संस्कारों में भी हमारे वैदिक काल के संस्कारों का हम जब पुनर्निर्माण करने में कामयाब हो सकेंगे वह समय हमारे समाज के सुन्दर स्वरूप का होगा।

उसी ओर बढने के लिए आपने (स्व. तनसिंहजी) हमें एक सुन्दर व्यवहारिक कार्य प्रणाली दी है। इसके माध्यम से हम अपने लक्ष्य तक पहुँचने में सफल हो सकेंगे। आपने अपने संपूर्ण जीवन का बलिदान करके इस प्रणाली को व्यावहारिकता प्रदान की। आज इसी प्रणाली के माध्यम से स्पष्ट है हमारा साध्य, साधना, साधक और साधन का स्वरूप। इसमें हमारी युगों-युगों की तपस्या को समाहित करने का प्रावधान है। जन्म जन्मान्तर तक अपनी साधना की राह पर चलने वाले साधक का चर्मोत्कृष्ट स्वरूप हमारे वैदिक काल के पुरुष से कम नहीं हो सकता।

आपने इस साधना पथ से जो हमें दिया है वह क्षात्रशक्ति के संचय का उपाय है। इसकी पृष्ठभूमि में शाश्वत सत्य और व्यावहारिकता है। इसकी प्रमाणिकता हमारा युगों-युगों का इतिहास, हमारी सांस्कृतिक मान्यताएँ, महापुरुषों की लम्बी शृंखलाएँ हैं। स्वयं राम और कृष्ण जैसे हमारे पूर्वज होने का हमें स्वाभिमान प्राप्त है। सृष्टि संरचना के प्रारम्भिक काल से हमारी पौराणिकता है। स्वयं परमेश्वर इसके प्रतिपादक हैं। हमारी क्षात्रशक्ति में माँ भक्ति का संमिश्रण है। क्या इस शक्ति व भक्ति के संमिश्रण में युग परिवर्तन के संकेत नहीं हैं।

अत: पाठकों मैं जिस दृष्टिकोण से स्व. तनसिंहजी को, उनकी विचारधारा को देख पाया, वह मैंने आपके समक्ष रख दिया है। उसमें मुझे समाज के सर्वांगीण विकास के दर्शन हो पा रहे हैं। आज आपके लिए इससे सुन्दर सर्वांगीण और व्यवहारिक राह हो नहीं सकती। आवश्यकता है कि आप आज ही इस कार्य में जुट जाएँ।

* साधको मैं आपको आगाह कर देना चाहता हूँ कि यह प्रणाली आपकी हर कमजोरी पर चोट करेगी। आप उस चोट के अनुसार कितने समय तक टिके रह सकते हो, आपका निर्माण बहुत कुछ उसी पर निर्भर है।
* आप अपने आन्तरिक भाव और बाहरी व्यवहार की दूरी को कितनी पार सकते हो यह बहुत कुछ आप पर निर्भर है।
* इसे ठीक से समझने के लिये आप अपने अन्तर जगत में कितना समर्पण भाव बना सकते हैं।
* इस साधनाप्रणाली का बहुत कुछ सम्बन्ध अपने अन्तर जगत से है। लगने वाली हर चोट के अनुकूल ढलते रहने का प्रयास करते रहना चाहिए।
* अपने अन्त:स्थल में छिपे गलत भाव को संरक्षण नहीं देना चाहिए। उस पर मन ही मन चोट करते रहना चाहिए।
* स्वार्थ, अहं, नेतृत्व की भूख, प्रशंसा की भूख इत्यादि ऐसे अवगुण हैं जो सामुहिक जीवन के लिए हानिकारक हैं अत: इन पर मन के हथोड़े की चोट करते रहना चाहिए।
* यह व्यष्टि के समष्टि में विलय का खेल है। एक सबके लिए, सब एक के लिए के भाव को प्रश्रय देते रहना चाहिए जब तक वह व्यवहार में न आ जाए।

पाठकों अंत में इस प्रणाली के व्यवहारिक होने का प्रमाण प्रस्तुत करना चाहता हूँ। उपरोक्त बिन्दुओं के आधार पर मैंने क्षत्रिय युवक संघ में जो संस्कार प्राप्त किये वे मेरे जीवन में बहुत काम आए। मैं बहुत लम्बे समय तक संकटों के घेरे में रहा। सब स्वजनों ने मेरा साथ छोड़ दिया तब इन संस्कारों ने मुझे उबार लिया। इन्हीं संस्कारों ने मेरेजीवन का अलंकार बनकर मुझे धन्य कर दिया।

(पू. तनतसिंहजी के स्वर्गवास के कुछ समय पश्चात ही भंवरसिंहजी कालवी ने यह लेख अपनी डायरी में लिखा, जिसकी फोटो प्रतिलिपि उनके सुपुत्र द्वारा प्राप्त हुई।)

स्वधर्म और स्वभाव

– कृपाकांक्षी

गीता में स्थान-स्थान पर स्वधर्म और स्वभाव की चर्चा की गई है। स्वधर्म की महत्ता बताते हुए तीसरे अध्याय के 35वें श्लोक में कहा गया है –

श्रेयान्स्वधर्मो विगुण: परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।
स्वधर्मे निधनं श्रेय: परधर्मो भयावह:।।

इसी प्रकार 18वें अध्याय के 47वें श्लोक में पुन: यही बात कही गई है –

श्रेयान्स्वधर्मो विगुण: परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।
स्वभावनियतं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम्।।

इस प्रकार गुणरहित स्वधर्म को भी श्रेष्ठ एवं परधर्म को भयावह बताने की बात गीता में दो बार एक समान शब्दों में बताई गई है। इस बात को कहने वाला श्लोकांश दो बार ज्यों का त्यों दोहराया गया है। तीसरे अध्याय में जहाँ स्वधर्म में मरना भी श्रेष्ठ बताया गया है और परधर्म को भयकारी बताया गया है, वहीं 18वें अध्याय में इस श्लोकांश के साथ स्वभाव को साथ जोड़ते हुए कहा गया है कि स्वभाव से नियत किये हुए कर्म करता हुआ पुरुष पाप अर्थात् आवागमन को प्राप्त नहीं होता। 18वें अध्याय में स्वभाव को स्वधर्म से जोड़ते हुए अनेक स्थानों पर इसका उल्लेख किया है।

45वें श्लोक में कहा गया है कि अपने-अपने स्वभाव में पायी जाने वाली योग्यता के अनुसार कर्म में लगा हुआ मनुष्य परमसिद्धि को प्राप्त होता है। 46वें श्लोक में लिखा है-**स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानव:।** अर्थात् अपने स्वभाव से उत्पन्न कर्म के द्वारा अर्चन कर मानव परमसिद्धि को प्राप्त होता है। 48वें श्लोक में कहा है- **सहजं कर्म कौन्तेय सदोषमपि न त्यजेत्।** अर्थात् स्वभाव से उत्पन्न सहज कर्म दोषयुक्त हो तो भी नहीं त्यागना चाहिए।

इस प्रकार स्थान-स्थान पर गीता में स्वधर्म और स्वभाव का उल्लेख करते हुए बताया गया है कि स्वभाव के अनुकूल कर्म ही स्वधर्म है। स्वभाव के विपरीत किए गये कार्य स्वधर्म की श्रेणी में नहीं आते और ऐसे कार्य पतन के कारण बनते हैं। इसलिए हमें अपने स्वभाव को समझकर ही स्वधर्म पर विचार करना चाहिए। धर्म का नाम लेते ही सर्वप्रथम हमारे सामने धर्म के प्रचारित अर्थ, पूजा पद्धतियों का विचार आता है, लेकिन यह धर्म नहीं है और गीता में इन्हें कहीं भी धर्म नहीं माना है। गीता में क्षात्रधर्म का अनेक जगह उल्लेख आता है अर्थात् यह धर्म का स्वरूप अवश्य है। ऐसे में इस परिभाषा के अनुसार ब्राह्मण धर्म, क्षात्रधर्म, वैश्य धर्म या शूद्र धर्म, धर्म के स्वरूप कहे जा सकते हैं।

स्वभाव का मोटे तौर पर प्रारम्भिक वर्गीकरण इसी प्रकार होता है। हमारे स्वभाव के निर्धारण में अनेक कारक उत्तरदायी होते हैं। उनमें सर्वाधिक स्थूल कारक हमारा परिवार, हमारा गाँव, हमारी पारिवारिक परम्पराएँ, संस्कृति, इतिहास, जीवनशैली आदि होते हैं। दूसरे सूक्ष्म स्वरूप को समझें तो हमारे को एक विशिष्ट कुल परम्परा, संस्कृति, परिवार, गाँव, भौगोलिक परिस्थितियाँ, इतिहास, माता-पिता आदि भी अनायास ही नहीं मिले हैं बल्कि हमारे पूर्व जन्मों के संस्कारों एवं जीव के स्वभाव के दबाव में ही ये मिलते हैं। इसलिए यदि हम क्षात्र परम्परा में जन्मे हैं तो उसका कारण भी हमारा स्वभाव ही है और उस स्वभाव के कारण हमारा स्वधर्म भी क्षात्रधर्म होगा। यह प्रारम्भिक वर्गीकरण है और यात्रा का प्रारम्भ यहीं से होता है। यह समूहगत स्वभाव है। इसी प्रकार के स्वभाव वाले अनेक लोगों का समूह क्षत्रिय वर्ण कहलाएगा और इस संपूर्ण समूह का स्वधर्म भी क्षात्रधर्म कहा जाएगा। लेकिन समूह भी आगे और वर्गीकरण को प्राप्त होगा और समूह में भी स्वभाव की समानता के कारण और छोटे समूह बनते जाएँगे।

जैसे श्री क्षत्रिय युवक संघ समग्र रूप से क्षात्रधर्म

की बात करता है क्योंकि वह ऐसे समूह-समाज के साथ काम करता है जिनमें क्षात्रधर्म के अनुकूल स्वभाव होता है, इसलिए समग्र रूप से संघ क्षात्रधर्म की बात करता है। लेकिन, संघ के स्वयंसेवकों में जिनका स्वभाव सेवा के अनुकूल होता है उन्हें उस प्रकार का कार्य दिया जाता है। इसलिये सूक्ष्म होते-होते स्वभाव व्यक्तिगत स्तर तक आता है। इस स्थिति में स्वधर्म भी व्यक्तिगत हो जाता है। ऐसी स्थिति में यदि किसी व्यक्ति का स्वभाव शान्त व चिंतनशील प्रकृति का है तो उसका स्वधर्म भी तद्नुकूल होना चाहिए। यदि किसी का स्वभाव बहिर्मुखी प्रकृति का है तो उसका स्वधर्म भी तद्नुकूल होगा। उसका विकास वैसे ही कामों से होगा। यहाँ यदि वह व्यक्ति अपने स्वधर्म को छोड़कर अन्तर्मुखी स्वभाव वाले व्यक्ति की नकल करने का प्रयास करेगा तो वह उसके लिए परधर्म होगा और वह उसके लिए भयकारक है।

यदि किसी का स्वभाव अधिक बोलने का है तो उसे चुप रहने का अभ्यास करने की अपेक्षा अपनी उस बोलने की वृत्ति का ही सदुपयोग करना चाहिए ताकि तदनुकूल उसका विकास हो सके। यदि वह अस्वाभाविक रूप से चुप रहने का प्रयास करेगा तो विकृति ही पैदा होगी। लेकिन क्या वह बोलता ही रहेगा? लेकिन किसी का स्वभाव क्रोध करने का है तो वह क्रोध ही करता रहे? यदि कोई बहिर्मुखी है तो क्या वह सदैव वैसा ही रहेगा? इसका उत्तर भी गीता देती है। इसलिए गीता में वर्ण परिवर्तन की बात कही गई है। अर्जुन से कहा गया है कि तू ब्राह्मण बन। अर्थात् यदि व्यक्ति अपने स्वाभाविक स्वधर्म में संलग्न रहेगा, अपने स्वभाव को पहचान कर तदनुकूल कर्मशील रहेगा तो कालान्तर में उसका वह स्वभावानुकूल कर्म उसे विकसित करेगा और वह आगे बढेगा। वही बहिर्मुखी स्वभाव कालान्तर में उस व्यक्ति को अन्तर्मुखी बना देगा। उसमें यह परिवर्तन सायास (परिश्रम-पूर्वक) नहीं होगा बल्कि सायास अपने स्वभावानुकूल कर्म करने पर अनायास ही यह परिवर्तन होगा। इस प्रकार पुन: वह अपने स्वभाव को पहचान कर कर्मशील होगा तो उत्तरोत्तर अगले सोपान पर पहुँच जाएगा। लेकिन अपने स्वभाव के विपरीत किसी की नकल करने का प्रयास करेगा तो वह स्थिति उसके लिए भयावह होगी, पतन का कारण बनेगी।

श्री क्षत्रिय युवक संघ की संपूर्ण प्रक्रिया इसी सोपान दर सोपान प्रगति की प्रक्रिया है। यहाँ स्थूल से प्रारम्भ कर सूक्ष्म तक की यात्रा स्वत: ही सोपान दर सोपान चलती रहती है। यहाँ प्रारम्भ से लेकर परिणति तक के उदाहरण उपलब्ध रहते हैं। इसलिए इस बात की भी पूरी संभावना रहती है कि व्यक्ति परधर्म की ओर आकर्षित होकर अपने स्वधर्म से विचलित हो जाए। इसलिए प्रारम्भ ही क्षात्रधर्म से होता है। सभी के लिए एक समान कार्यप्रणाली और लक्ष्य होता है जो क्षात्रधर्म में प्रवृत्त करे क्योंकि आने वाले सभी लोग एक समान वंश परम्परा, एक समान संस्कृति, एक समान इतिहास, एक समान परम्पराओं की भूमिका लेकर आए हैं। सभी के पूर्व जन्म के संस्कारों में भी साम्य होता है, इसलिए तो एक समान ही कुल परम्परा मिलती है। लेकिन कालांतर में संघ का व्यक्तिगत शिक्षण प्रारम्भ होता है। संघप्रमुखश्री एक-एक व्यक्ति को व्यक्तिगत निर्देशन प्रदान करते हैं और सम्बन्धित के स्वभावानुसार उसके स्वधर्म पर आरूढ करने के लिए अंगुली पकड़कर मार्गदर्शन करते हैं। इस प्रकार संघ सम्पूर्णता को स्वयं में समेट कर चलता है। स्थूल से सूक्ष्म तक की यात्रा करवाता है लेकिन आवश्यकता हमारे स्वयं के सक्रिय सहयोग की रहती है। आवश्यकता इस बात की रहती है कि कहीं हम शंबूक बन शूद्र के स्तर के होते हुए भी ब्राह्मण का सा आचरण न करने लगें, नहीं तो हमारे में अंकुरित साधना रूपी ब्राह्मण बालक को मरने से कोई रोक नहीं पाएगा। इसलिए श्रेष्ठ तरीका यही है कि हम परमेश्वर से उसकी कृपा की माँग करें, संघ से उसकी कृपा के लिए प्रार्थना करें ताकि हम **स्वधर्मे निधनं श्रेय:** पर डटे रहें।

❐

धारावाहिक

चित्रकथा–‘लोकदेवता बाबा रामदेव जी’

– बृजराजसिंह खरेड़ा

समाचार सुनकर डाली उदास हो जाती है...
डाली! तुम उदास क्यों हो गई?
पहले लाछो-सुगना बहनें पराई हो गई!... मेरे तो पालनहार और प्रभु दोनों आप ही हैं, अब तो आप भी पराये हो जाएँगे
पगली मैं कभी तुमसे पराया नहीं हो सकता, पत्नी तो गृहस्थ जीवन की संगिनी होगी... तुम तो आध्यात्मक, सामाजिक धर्म की संगिनी हो!
जब तक जीवन है, अपनी कृपा बनाए रखना प्रभु!
विवाह में लाछो आ गई किंतु सुगना को ससुराल वालों ने नहीं भेजा तो रामदेव जी ने रतने राइके को सुगना को लेने पुंगलगढ़ भेजा...
बीनणी को लेने अब राईका आया है!
छोटी जात वालों में उठने बैठने वाले रामदेव व उसके परिवार के साथ हमारा कोई सम्बंध नहीं! ...इसे कैद करता हूं मैं!
सुगना तो ससुराल में कब से प्रताड़ित हो रही थी...अब भाई के विवाह व पीहर के आदमी की कैद के बारे में जान कर बिलख पड़ी
हे! द्वारकाधीश, अब कब तक परीक्षा लोगे?...पीहर के आदमी को भी कैद कर लिया, क्या मैं भाई को बीन्द बनते हुए भी नहीं देख पाऊंगी!.. मैंने सास-ननद की सब यातनाएं सहन की किंतु आप से नहीं कहा, किंतु अब तो कृपा करो
भाई रामदेव! तुम भी अपनी बहिन को भूल गये क्या? काश! तुम्हें पता चल जाए कि तुम्हारी प्यारी बहिन किस स्थिति में है!
जगत की पीड़ा दूर करते हो... बहिन की नहीं करोगे?
बहिन की करूण पुकार भाई तक जा पहुंची
मां सा! सुगना कष्ट में है!...रतने को भी कैद कर लिया है. मुझे जाना होगा
तेल-बान बैठ गये, अब कैसे जा सकते हो!
सुगना के ससुराल वालों ने सारी मर्यादाएं भंग कर दी, जाना ही होगा

रिश्तों की नाजुकता

– महिपालसिंह चूली

इंसान गलती का पुतला है, उससे कभी भी गलती हो सकती है। लेकिन हर गलती के बाद गलती का एहसास करना, इससे आवश्यक पाठ सीखना, इसके मूल कारणों की तह तक जाना व उसे दुबारा न दोहराने का प्रयास करना, यह हर समझदार व्यक्ति का तरीका होता है। इसी आधार पर उसके व्यक्तित्व में निखार आता है और आपसी रिश्ते मजबूत होते हैं।

यदि किसी व्यक्ति से अनजाने में कोई गलती हो जाए और दूसरा उस विषय में ज्यादा संवेदनशील हो, बात का बतंगड़ बनाने पर तुल जाए तथा आक्रोश में ऐसी बातें कह जाए कि आपके सत्य, ईमान और अस्तित्व को झकझोर डाले तो स्थिति विकट हो जाती है और थोड़ी देर के लिए आपसी रिश्तों की चूलें हिल जाती हैं। ऐसे में क्या करना चाहिए, इसकी समझ जरूरी है। स्वाभाविक रूप में ऐसा व्यवहार मिलने पर विचलित होना, तीव्र प्रतिक्रिया का उभरना और ईंट का जवाब पत्थर से देने का भाव जगता है। लेकिन, आपसी रिश्तों की नाजुकता को देखते हुए स्थिति से निपटने का यह तरीका समझदारी वाला नहीं माना जा सकता। ऐसे में स्वर्णिम सूत्र होता है कि शान्त रहें, सकारात्मक रहें, धैर्य न खोएँ व घटना के मूल में निहित कारणों तक जाने की कोशिश करें व घटित भूल से आवश्यक सबक लेकर आगे बढें।

साथ ही सामने वाले को अपने हाल पर छोड़ दें। उसके क्रोध पर आपका क्या वश, जो आपके वश में है उसको साधें। आपके वश में आपका व्यवहार है, आपकी वाणी है, आपका आचरण है और आपके भाव-विचार हैं, इन्हें यथा सम्भव शान्त व प्रतिक्रियाहीन बनाए रखने का प्रयास करें। यह कठिन हो सकता है लेकिन इसका अभ्यास करना होगा। हमारा संयम सामने वाले को आत्मचिन्तन का अवसर देगा। उसे देर-सवेर अपनी गलती का एहसास जरूर होगा क्योंकि कोई भी व्यक्ति अपनी अंतरात्मा की आवाज को अधिक समय तक नजरअंदाज नहीं कर सकता। साथ ही शान्त रहने पर अपनी ओर से हुई भूल-चूक का भी एहसास हो जाएगा। जिससे आगे चलकर ऐसी विकट स्थित का सामना करने की नौबत नहीं आएगी।

यदि दूसरे के अतिवादी व्यवहार पर हम भी वैसा ही उत्तर दे जाते हैं तो समझो आग में घी डालने का काम कर रहे हैं। तब विवाद और तूल पकड़ेगा। आपसी कलह का संकट और गहराएगा। भावी संवाद की सम्भावनाएँ कम होती जाएगी। आपसी कटुता बढेगी और रिश्तों में दरार की नौबत आ जाएगी। साथ ही अशान्ति व तनाव का वातावरण बनना प्रारम्भ हो जाएगा। यही शान्ति, संतुलन एवं सौहार्द्र का राजमार्ग है। यही आपसी विश्वास, सद्भाव के साथ रिश्तों की मजबूती का राजपथ है। यही आपसी रिश्तों व परिवार में सुख-शान्ति का आधार है। जितना हम ऐसी अग्नि परीक्षाओं से तपकर बाहर निकलेंगे उतना ही हम आंतरिक रूप से दृढ होकर निकलेंगे। व्यक्तित्व अधिक सशक्त एवं चरित्र अधिक विश्वसनीय तथा प्रमाणिक होकर निकलेगा और जीवन परम लक्ष्य की ओर गतिशील होगा। भविष्य में ऐसी चूक की मात्रा भी कम होगी और प्रतिपक्ष भी अपनी प्रतिक्रिया को संयत करना सीखता जाएगा।

यदि प्रतिपक्ष में न्यूनतम समझ व संवेदना की वृत्ति है तो सम्भव है देर-सवेर उसका हृदय परिवर्तन हो जाए। वह अन्दर से बदलने के लिये विवश हो जाए तथा उसके व्यवहार में सुधार होने लग जाए। सत्य, प्रेम एवं धर्म की इसी शक्ति के आधार पर दूसरों में परिवर्तन आना सम्भव है। हालांकि यह असीम धैर्य एवं सूझ की माँग करता है, जीवन के प्रति गहरी समझ से पनपी दृढ़ता की माँग करता है। यह योद्धाओं का मार्ग है।

यह विनम्रता, धीरता एवं अच्छाई की अचूक शक्ति पर विश्वास का मार्ग है। कोई इसको दुर्बलता समझने की भूल कर सकता है लेकिन वास्तविकता यह है कि यह वीरता का पथ है। यह सत्य एवं धर्म का मार्ग है जिसमें व्यक्ति कभी अकेला नहीं होता। जब सत्य और ईमान आपके साथ होते हैं तो स्वयं ईश्वरीय विधान साथ में सक्रिय होता है। मेरे जैसे ऊजड़ व अक्खड़ व्यक्ति के लिए यह पथ थोड़ा कठिन जरूर है, परन्तु वास्तविक चिन्तन के आधार पर धैर्य की आवश्यकता है जिससे आपसी परिवार व संघ परिवार के रिश्तों की नाजुकता का आभास हो और उसे सही तरीके से निभाने का अभ्यास कर सकूं और अपनी अक्खड़ता तो दूर करके विनयशीलता को धारण करूँ, यही परमपिता परमेश्वर से प्रार्थना है।

विचार-सरिता

(षष्टिः लहरी)

– विचारक

आत्मविषयनी बुद्धि में चिदानन्दघन परमात्मा की प्रगाढ़ता के परिणाम स्वरूप उस आत्मवेत्ता महापुरुष की दृष्टि में एक ब्रह्म के अतिरिक्त दूसरा कुछ है ही नहीं। वह सर्वत्र एक परमात्मा को ही सावयव व निरवयव रूप में निहार रहा होता है। मन की समस्त कलनाएँ जिसकी शान्त हो गई हो उसे कभी मानसिक शोक होगा ही नहीं। जो नित्य तथा सर्वदा ध्यान करने योग्य एवं सुगम, संपूर्ण आनन्दों की निधि, अत्यन्त प्रसन्न विज्ञानानन्दघन परमात्मा में स्थित रहता है और जो निरंतर परमात्मा के विचार में निमग्न, सदा अन्तर्मुखी वृत्ति से युक्त, सुखी तथा नित्य चिन्मय परमात्मा की अनुसंधान करने वाला है, उसे राग और द्वेष के झंझावत कभी झकझोर नहीं सकते। जो परमात्मा के यथार्थ ज्ञान से सम्पन्न, शुद्ध, भीतर से परमशान्त एवं मननशील महात्मा है, उसे मन क्लेश नहीं दे सकता–ठीक उसी तरह जैसे भीमकाय गजराज भी सिंह को बाधा नहीं पहुँचा सकता।

जिस साधक को ज्यों ही 'अविद्या असत् है' यों अविद्या के स्वरूप का यथार्थ ज्ञान हुआ, त्यों ही उसका सदा-सर्वदा के लिये अभाव हो जाता है। जैसे स्वप्न का ज्ञान होते ही स्वप्न की समस्त भोग सामग्री मिथ्या हो जाती है ऐसे ही ज्ञानी के लिये असत् अविद्या शान्त हो जाती है। जिसकी बुद्धि विषयों की आसक्ति से रहित और केवल विज्ञानानन्दघन परमात्मा में नित्य स्थित है, उस श्रेष्ठ महापुरुष को व्यवहार परायण रहने पर भी पाप स्पर्श नहीं कर सकता। जब ज्ञानी के हृदय में चेतन परमात्मा के देदीप्यमान प्रकाश का उदय होता है, तब अज्ञानरूपी रात्रि तत्काल विनष्ट हो जाती है और उस महापुरुष की परमानन्द को प्राप्त हुई बुद्धि प्रकाशित हो उठती है। उस यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति होने पर फिर कभी मोह की बेल नहीं पसरती। मोह का अतिक्रमण कर लेने वाला साधक निरंतर आत्मचिंतन के प्रभाव से अपने अन्तःकरण में उसी प्रकार शीतलता को प्राप्त कर लेता है, जैसे चन्द्रमा अपने भीतर सदा अमृत से शीतल बना रहता है।

जिन जीवों के पाप क्षीण नहीं हुए हैं और जो परमात्मा की प्राप्ति की उपेक्षा करते हैं, वे जन्म रूपी जंगल के झाड़-झंखाड़ है। सदैव दीन, हीन और पराधीन बने कोल्हू के बैल की भाँति जन्म और मरण की परिधि में घूमते ही रहते हैं। वे तो चिरकाल तक दुःखों के दावानल में जलते रहते हैं। किसी पुण्य के प्रताप से ईश्वर की कृपा से जब मनुष्य योनि मिलती है तो एक अवसर जरूर उसे हाथ लगता है जिसमें वह किसी आत्मज्ञानी सन्त की करुणा और कृपा का पात्र बन जाता है तो उसे भी वह सद्गुरु अज्ञान आरण्य से निकाल कर अपने आत्मज्ञान में प्रतिष्ठित कर देता है।

अज्ञानदशा के कारण जिन देहाभिमानी मनुष्यों को शरीर में ही अहंबुद्धि हो रही है और देह के समस्त व्यापारों व विकारों को अपना विकार मान रहा है उस जड़ता से छुटकारा पाने का एक ही उपाय है कि वह नितप्रति सत्संग व महापुरुषों का सान्निध्य प्राप्त करता रहे तथा देह की जड़ता से अपनी वृत्ति को हटाकर चेतनात्मा में स्थिति करे। वास्तविकता तो यह है कि आत्मा के साथ देहादि का सम्बन्ध होता ही नहीं है, फिर भी अज्ञानदशा के कारण सम्बन्ध-सा प्रतीत होता है। अज्ञान के कारण हमारी बुद्धि में यह भ्रान्ति हो रही है कि आत्मा और देह का तादात्म्य हो गया है और इस पाञ्चभौतिक देह को ही हम अपना आप मान रहे हैं। वस्तुतः शरीर और शुद्ध आत्मा का सम्बन्ध मिथ्या ही है; क्योंकि इनका सम्बन्ध हो ही नहीं सकता। विद्वानों का कथन है कि देह में अहंभावना करने से ही आत्मा दैहिक दुःखों के वशीभूत होता है तथा उस देहभावना का त्याग कर देने से वह उस दुःखजाल से मुक्त हो जाता है। यद्यपि आत्मा, देह, इन्द्रिय और अन्तःकरण परस्पर एक दूसरे से सम्बद्ध हैं, तथापि अन्तःकरण में अहंता, ममता

और आसक्ति का अभाव होने के कारण ज्ञानीजन सदा-सर्वदा दु:ख रहित ही रहते हैं।

अहंता, ममता और आसक्ति ही समस्त प्राणियों के जरा, मरण और मोहरूपी दु:खों का मूल है। जो जीव अहंता, ममता और आसक्ति से युक्त है, वह भवससागर में डूबा हुआ है और काम, क्रोध, लोभ, मोह मत्सरादि ग्राहों से दंशित होता रहता है। परन्तु जिसने अहंता, ममता और आसक्ति के पाश से अपने को मुक्त कर लिया है, वह समझ ले कि मैंने भवसिन्धु को पार कर लिया है। जो चित्त विषयों की आसक्ति से रहित और निर्मल है; वह संसारी होते हुए भी मुक्त है। जिस प्रकार लोहादि भार से युक्त होने पर भी जलयुक्त नौका जल के धर्मों से लिपायमान नहीं होती और वह अथाह जलराशि में भी डूबती नहीं है तथा नाविक के चलाने पर उस पार लग जाती है वैसे ही अहंता, ममता और आसक्ति से रहित पुरुष शरीर-यात्रा के लिये न्याययुक्त कर्म करता हुआ भी कर्तृत्व से लिप्त नहीं होता। जो साधक अहंता, ममता और आसक्ति से रहित तथा परम मधुर परमात्मा में नित्य स्थित है, वह बाहर से कुछ भी कार्य करे अथवा न करे, किसी भी दशा में वह कर्ता अथवा भोक्ता नहीं है। ऐसे स्थितप्रज्ञ महापुरुष सदैव स्तुत्य व वन्दनीय होते हैं। मेरा भी उन महापुरुषों के चरणों में श्रद्धायुक्त नमन!

ओम् शान्ति:! ओम् शान्ति:!! ओम् शान्ति:!!!

पृष्ठ 5 का शेष

चलता रहे मेरा संघ

हम जितना महत्त्वपूर्ण कार्य कर रहे हैं, उसकी आवश्यकता है कि हमारी पूरे भारत में प्रतिष्ठा होनी चाहिए। हम स्वयं अपनी और अन्यों की श्रेष्ठता का सम्मान करना सीखें। क्षत्रिय युवक संघ का दिया हुआ यह प्रमाण पत्र मान लीजिए कि आप श्रेष्ठ हो, आप में श्रेष्ठता है अत: अपने व्यवहार को श्रेष्ठ रखो, उस श्रेष्ठता को प्रकट करो और व्यवहार में उतारो। संघ ने आप में दैवी गुणों को देखा है, अत: वैसे ही आपको बने रहना है, हल्का जीवन शोभा नहीं देता, वह नहीं चलेगा। कोई गलती करता है, उसकी ओर आपकी नजर न जाए, उसकी नकल न करें। आपका ध्यान दूसरों की असुर सम्पदा की ओर न जाए। एक वर्ष तक आप अपना आचरण श्रेष्ठ बना लें तो पूरे राष्ट्र में आपका रुतबा हो जाएगा।

चलाकर महात्मा लोग आपके शिविर में आते हैं तो कुछ तो उन्होंने देखा होगा। उनकी नजर संघ की श्रेष्ठता पर है, पर क्या हमारी नजर हमारी श्रेष्ठता पर है? आपके पास सब कुछ है, बस अपनी नेष्ठताओं को नकार दो फिर श्रेष्ठता स्वत: ही प्रकट हो जाएगी। अवज्ञा, ईर्ष्या, द्वेष, मजाक आदि से छुट्टी पा लें तो जो बचेगी वह श्रेष्ठता ही है। गीता और रामायण का एक ही संदेश कि अपनी छिपी हुई श्रेष्ठता को प्रकट करो। यही पूज्य तनसिंहजी की अनुभूति है जो उनके सहगीतों में प्रकट होती है। संघ के प्रवचन व संघ साहित्य सभी पूज्य तनसिंहजी की अनुभूतियाँ ही हैं। उनको मानकर उसी के अनुसार अपना जीवन घटित करना है।

भारत अपनी श्रेष्ठता को देखे और अपना ले तो भारत पुन: विश्व-गुरु बन सकता है। हमारे पूर्वजों की श्रेष्ठताओं से हमारा इतिहास उज्ज्वल बना है। वे राजपूत की विशेषताएँ हमारे अन्दर भी हैं। पर हम उनको न देखकर बाहर देख रहे हैं। बाहर देखने से जो नेष्ठताएँ हमने चिपका ली हैं उन्हें उतार फेंकना है। अपनी श्रेष्ठताओं को स्वीकार करें और अपने जीवन में ढालें। अपने आप में यह परिवर्तन करना आवश्यक है। अपने आप में परिवर्तन करने वाले ही क्रांति ला सकते हैं। अत: जो यहाँ संघ में कहा जाए, उसे मानना और जीवन में ढालना आवश्यक है। विद्वेष जो हमारी कौम में जड़ें जमा रहा है, उसे मारो, उसका संहार करो। परस्पर लड़ना छोड़ो। जो दायित्व की माँग है, उसे मान लो और पूरा करो। हमें संघ का आज्ञाकारी होने का संदेश लेकर जाना है। चाहे कोई दायित्वधारी हो, चाहे साधारण स्वयंसेवक हो, सभी को अपनी श्रेष्ठता बनानी है ताकि संघ की श्रेष्ठता उजागर हो सके।

स्वयं के बारे में भी गम्भीरतापूर्वक चिन्तन करें

– भँवरसिंह रेड़ी

मनुष्य अधिकतर समय अन्यों के सम्बन्ध में ही विचार या वार्तालाप करने में तल्लीन रहता है। मैं कौन हूँ?-किस जाति का हूँ-कहाँ से आया हूँ-कहाँ जाऊँगा-क्यों आया हूँ-मेरा मूल कर्तव्य व उद्देश्य क्या है? इन बातों पर गम्भीरता से विरले मानव ही चिन्तन करते हैं।

दोष पराए देखि करि, चला हसन्त हसन्त।
अपने याद न आवई, जिनका आदि न अंत।।

मनुष्य पराई निन्दा या पराये दोष निकालने में बड़ा आनन्द महसूस करता है। जब भी दो या दो से अधिक व्यक्ति एक साथ बैठे होते हैं-चाहे चौपाल हो, चाहे होटल में हों, मिटिंग में या घर या बाजार में, प्रसंग दूसरों की कमियों का ही चलाते हैं। उस समय भूल जाते हैं कि हम अन्यों की कमियों या बुराइयों का जिक्र कर रहे हैं क्या वे हमारे अन्दर नहीं हैं?

कमियाँ प्रत्येक मनुष्य में होती हैं क्योंकि अपने आप में परिपूर्ण या सर्वगुण सम्पन्न कोई मानव नहीं हो सकता। वह तो केवल परमपिता परमात्मा ही है जो सर्वगुण सम्पन्न, अविनाशी, सर्वव्यापी, अन्तर्यामी व पारब्रह्म परमेश्वर है। उनमें किसी प्रकार के अभाव की कल्पना करना निरर्थक है।

एकान्त में स्थिर बुद्धि से, स्वयं के बारे में चिन्तन अवश्य करें और हर प्रकार की होने वाली मानवीय भूल के सम्बन्ध में अपने आप की परख करें कि यह अभाव या बुराई मेरे में है या नहीं। यदि आपकी अन्तरात्मा कह दे कि यह-यह कमियाँ हैं तो उनमें सुधार करने का प्रयास करके उनसे मुक्त हो जायें तभी हम दूसरों की कमियों पर हँसने या आलोचना करने के सच्चे अधिकारी हो सकेंगे। संक्षेप में निम्न बिन्दुओं पर अपने आपके बारे में चिन्तन कर सकते हैं –

1. **दया धर्म का मूल है पाप मूल अभिमान।** हम दीन-दुखियों, पीड़ितों-शोषितों, बे सहारों, बीमारों, असहायों के प्रति दया का भाव अपने हृदय में कितना रखते हैं? दया अर्थात् करुणा को धर्म का आधार माना गया है और दया उपेक्षितों के प्रति अवश्य रखनी चाहिए। क्षत्रिय की तो परिभाषा ही यहीं से शुरू होती है-जो क्षय होने से बचाये उसी को क्षत्रिय कहते हैं। क्षत्रिय तो जीता ही केवल दूसरों के लिये है, स्वयं के लिये नहीं जीता है। पुराने इतिहासों-वेदों-ग्रन्थों को पढने से इसकी प्रमाणिकता सिद्ध होती है।
2. अहंकार को पापों का आधार माना गया है। अहंकारी व्यक्ति कभी आस्तिक नहीं हो सकता और आस्तिकता के अभाव में अपने अहंकार की तुष्टि के लिये कुछ भी अनर्थ करने को तत्पर रहता है। झूठ, छल-कपट, चोरी-जारी किसी प्रकार के अत्याचार करने में ऐसे व्यक्ति को कोई परहेज नहीं होता है और धर्म व पाप में कुछ अन्तर नहीं समझता है। क्या हमारे अन्दर भी ऐसा है? यदि है तो इसको बाहर निकाल फेंकने के बाद ही दूसरों को उपदेश देने का प्रयास करें।
3. **परहित सरिस धर्म नहिं भाई।**
   पर पीड़ा सम नहीं अधमाई।।
   हमारे अन्दर परोपकार की भावना कितनी है। आवश्यकता पड़ने पर इस क्षेत्र में हम कितना कुछ कर पा रहे हैं। परोपकार को बहुत बड़ा धर्म माना गया है। ऐसे व्यक्तियों को समाज सदैव स्मरण रखता है और यशोगान भी करता है।
4. पर-पीड़ा अर्थात् दूसरों को पीड़ित करना बहुत बड़ा पाप होता है। हमें हमारे अन्त:करण में पर-पीड़ा को कभी भी स्थान नहीं देना चाहिये।
5. **साँच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप।**
   जाके हृदय सांच है ता हिरदे हरि आप।।
   हमें सत्य को सदैव अपनाना चाहिये, इसे तपस्या कहा गया है। हम अपने आपको बड़ा महान सिद्ध

करने के लिये कहीं झूठ का प्रयोग तो नहीं कर रहे हैं? कई बार अपनी गलती छिपाने के लिए झूठ का सहारा लिया जाता है। यह दोयम बुराई हो गयी। पहले गलती करना व बाद में उसको मिटाने के लिये झूठ बोलना। झूठ विवाद व झगड़े की जड़ होता है। यदि हम गलती को गलती होते ही स्वीकार कर लेते हैं तो झगड़ा या विवाद होगा ही नहीं।

6. झूठ को बहुत बड़ा पाप माना गया है। झूठ है वहाँ ईश्वर नहीं, जहाँ सत्य है वहाँ आप अर्थात् ईश्वर है। हम भाग्यशाली हैं कि हमारे ऊपर ईश्वर की असीम कृपा है कि जिस देश में राम-कृष्ण-शिव जैसे अवतार आए और धर्म की रक्षा की है, विधर्मियों का नाश किया है, ऐसे में प्रभु ने हमें जन्म दिया है। जिस प्रदेश में रामदेवजी-गोगाजी-करणीजी-पाबूजी आदि कई देवी-देवता हुए हैं, मीरा-रैदास-कर्माबाई-सेनभक्त जैसे अनेक भक्त हुए हैं, महाराणा प्रताप-शेखाजी-रिड़मल जी जैसे बहुत से योद्धा हुए हैं, पन्नाधाय जैसी स्वामीभक्त व दुर्गादास जैसे महान योद्धा व कुलरक्षक हुए हैं उस प्रदेश में हमें जन्म दिया है और क्षत्रिय वंश में जन्म दिया है जिसमें सभी अवतार व देवता हुए हैं।

ईश्वर ने हमें दूसरों के लिये अर्थात् परहित और अपने कर्तव्य व आनुवांषिक गुणों को समझते हुए जीवन जीने के लिए भेजा है न कि भोग भोगने व संपत्ति संग्रह के लिए भेजा है। वंश वृद्धि और पेट पालने का काम तो पशु-पक्षी, कीट पतंग, सभी प्रकार के जीव-जन्तु भी कर लेते हैं फिर हमारे में और उनमें अन्तर क्या हुआ?

7. **मैं जब पैदा हुआ जग हँसा मैं रोया।**
ऐसी करनी कर चलो मैं हँसू जग रोये।।

अपनी कमियों के सम्बन्ध में सदैव एकान्त में शान्त भाव से बैठकर चिन्तन अवश्य करें और यथासम्भव उन्हें दूर करते रहें और ईश्वर स्मरण सदैव करते रहें।

औषध राम नाम की खाइये।
मृत्यु जन्म का रोग मिटाइये।।

❒

पृष्ठ 8 का शेष **पूज्य श्री तनसिंहजी (के सम्बन्ध में)**

परन्तु चिन्तित होकर भी और प्रयत्न करने पर भी, हम तुम्हें तो नहीं पा सके पर तुम्हारी क्षमताओं को हमने प्राप्त कर लिया। बस रहस्य की बात यही है कि आज तक भी हम तुमसे जो प्यार करते आ रहे हैं वह तुम्हारे छुंआरे जैसे सूखे हुए शरीर अथवा सुन्दर आकृति के लिए नहीं कर रहे हैं बल्कि तुम्हारी क्षमताओं से हमें प्यार था। तुम्हारे विरोध ने वही क्षमताएँ तुमसे छीन ली और उन्हें हमें अयाचित रूप से ही प्रदान कर दिया। तुम्हारी कब्र बता रही है कि तुम कैसे हो? हाँ अब तुम केवल चलती फिरती कब्र बनकर रह गये हो। तुम्हारी समस्त विशेषताओं को मेरे इस सांघिक कुटुम्ब ने आत्मसात कर लिया है। अब तुम छूटी हुई तोप के समान जहाँ कहीं भी जाओगे और जिस किसी के साथ रहोगे, भार बनकर ही रहोगे। तुम्हारा यह त्याग हमारे लिए वन्दनीय है कि तुम्हारी मृत्यु ने भी हमें जो शिक्षा दी वह तुम्हारा जीवन नहीं दे सकता था।''

पूज्य श्री तनसिंहजी की सफलता का क्या राज था, यह उनके विरोधी नहीं जानते। उन्होंने अपने विरोधी को अपने जीवन की सफलता का रहस्य जो बताया, उन्हीं की जुबान से -

''अब मैं अपने विरोधी को अपने जीवन का रहस्य बताता हूँ। कर्म ही मेरा जीवन है और अकर्मण्यता ही मेरी मृत्यु है। जिस दिन किसी विरोधी ने मुझे अकर्मण्य बना दिया, उस दिन भगवान भी मेरी रक्षा नहीं कर सकते, मेरी मृत्यु निश्चित है और जब तक मैं कर्म करता रहूंगा, स्वयं भगवान भी मेरा कुछ नहीं करेंगे। यदि किसी विरोधी को मेरे प्राण लेने हों तो एक उपाय है कि वह मेरे कुटुम्ब के आँगन में आकर कर्म करे। कर्मण्यता से ही वह मुझे निर्णायक मात दे सकता है। अकर्मण्य विरोधी तो कुछ होता ही नहीं, वह तो स्वयं अस्तित्वहीन है। उससे मुझे कोई भय नहीं है। मैं तो उससे विनोद किया करता हूँ और उसकी कायरता से खेल खेलता हूँ।'' **(क्रमशः)**

अपनी बात

रवीन्द्रनाथ टैगोर की एक कविता है : एक महा-मन्दिर, उसके बड़े पुजारी ने स्वप्न देखा कि परमात्मा स्वप्न में खड़े होकर उससे कह रहे हैं-कि कल मैं आता हूँ। तुम्हारी पूजाएँ, तुम्हारी प्रार्थनाएँ स्वीकार हो गई हैं। कल मैं आता हूँ।

उस अपूर्व दृश्य को देखकर, उस ज्योतिपिंड को देखकर और उस वाणी को सुनकर मुख्य पुजारी की नींद टूट गई। यद्यपि पुजारी था, बड़ा पुजारी था, उस मंदिर में सौ पुजारी थे, वह बड़ा मंदिर था, पुजारी होकर भी उसे ऐसा लगा कि औरों को कहूँ कि न कहूँ? लोग हँसेंगे।

कहा जाता है कि औरों का चाहे धर्म पर थोड़ा बहुत भरोसा हो, पुजारियों का बिल्कुल भरोसा नहीं है। पुजारी तो धंधा कर रहा है। भगवान उसकी दुकान है वह तो धंधे में है। उसे क्या लेना-देना! और वह भलीभाँति जानता है कि इस मूर्ति में कुछ भी नहीं। क्योंकि कई बार उसने देखा कि मूर्ति पर चूहा चढ गया, उसी से तो अपनी रक्षा नहीं कर पाते, और किससे किसी की रक्षा करेंगे? कभी हवा के झोंके से मूर्ति लुढक जाती है, तो अपने आप ऊठकर नहीं बैठ पाती। अब दूसरों का क्या सहारा बनेंगे? सब बकवास है कि अंधों को आँखें दी और लंगड़ों को पहाड़ चढा दिया। लेकिन कोई पुजारी विलक्षण भी होता है, जैसे- रामकृष्ण परमहंस।

वह बड़ा पुजारी था, डरा कि और पुजारियों को कहूंगा तो वे हँसेंगे। कम से कम नए पुजारी तो बहुत हंसेंगे कि अब बूढा हो गया, सनक गया मालूम होता है। सठिया गया है, कभी आया है भगवान?

तो चुपचाप सोता रहा। लेकिन फिर सपना आया। फिर वही ज्योतिर्मय पिंड! फिर वही घोषणा-देख भरोसा कर, कल आता हूँ। फिर नींद टूट गई। फिर अपने को समझा-बुझा लिया कि अभी आधी रात किसको उठाऊं, सुबह देखेंगे सुबह तक समझ फिर आ जाएगी, वापिस, तो किसी से कहने की जरूरत नहीं। कौन आता है।

फिर तीसरी बार सपना आया, तो फिर मुश्किल हो गई। फिर तो घबराहट भी लगी कि कहीं ऐसा न हो, आ ही जाए। तो उसने सब पुजारियों को जगा दिया। लोग हँसने लगे। उन्होंने कहा कि आप भी कैसी बातों में पड़ गए, सपने कहीं सच होते हैं? सपने, सपने हैं, कौन कब आता है? इस मंदिर को बने हुए हजारों साल हो गये, कभी परमात्मा आया है? कभी उसने किसी की प्रार्थना सुनी है? सब प्रार्थनाएँ कोरे आकाश में खो जाती हैं, न कोई सुनने वाला है, न कोई उत्तर देने वाला है। हमसे ज्यादा इस बात को कौन जानेगा, कितनी प्रार्थनाएँ करते हैं, लेकिन एक प्रार्थना तो कभी सुनी नहीं गई।

बूढे पुजारी ने कहा-तुम्हारी बात मेरी भी समझ में आती है। मैं भी यही मानता हूँ कि कोई आने जाने वाला है नहीं, लेकिन तीन बार सपना आया है, कहीं ऐसा न हो कि वह आ ही जाए और हम तैयार न हों। तो हर्ज क्या है, हम तैयारी तो कर ही लें, आए तो ठीक, न आए तो कोई हर्ज नहीं। यह बात जची। मंदिर धोया गया, सजाया गया, भोजन बनाया गया और लोग हँस रहे हैं, भोजन भी बना रहे हैं कि मेहमान आने वाला है और हँस भी रहे हैं। वे कह रहे हैं- कौन कब आता है। और जानते हैं कि यह भोग अपने को ही लगने वाला है। कोई और आने वाला नहीं।

फिर साँझ भी आई और आने वाला नहीं आया। फिर हंसी खूब उठने लगी। फिर खूब मजाक चलने लगा। फिर उन्होंने सबने मिलकर बड़े पुजारी को कहा कि अब बहुत हो गया, अब दिन भर हो गया प्रतीक्षा करते-करते। अब हम भी भूखे हैं, थक भी गये हैं, अब हम भोजन करें और विश्राम करें। अब सूरज भी ढल गया। आना होता तो आ गया होता। अब कोई रात में तो आएगा नहीं। फिर उन्होंने भोजन किया। दिन भर के थके-मांदे थे, सो गए। और रात, आधी रात उसका रथ आया।

यह कविता बहुत प्यारी है। इसे समझना आवश्यक है। आधी रात उसका रथ आया। उसके रथ की आवाज, उसके रथ के चाकों की गड़गड़ाहट-और किसी पुजारी ने नींद में सुनी आवाज। वह नींद में कुनमुनाया। उसने कहा-

'भाइयो! मुझे लगता है, वह आया। रथ की गड़गड़ाहट सुनाई पड़ती है।' एक दूसरा पुजारी चिल्लाया कि बन्द करो बकवास। दिन भर का थका-मारा है और अब सोता भी नहीं शान्ति से। यह कोई रथ नहीं है। कहाँ का रथ? रथ होते हैं अब? यह बादलों की गड़गड़ाहट है। तुम चुपचाप सो जाओ।

फिर सन्नाटा हो गया। मंदिर के द्वार पर आकर रुका। वह उतरा। वह सीढ़ियाँ चढा। और उसके चढने की आवाज, वह मधुर रव जो परमात्मा के चरणों में ही होता है, फिर सुनाई पड़ा। फिर किसी ने कहा कि भाई मुझे लगता है कि कोई सीढियों पर चढ रहा है और एक अजीब संगीत सीढियों पर गूंज रहा है। फिर चिल्लाया कि यह तो हद हो गई, लगता है आज सोना संभव नहीं है। कुछ भी नहीं है। हवा वृक्षों से गुजरती होगी।

फिर उसने द्वार पर दस्तक दी। और किसी ने कहा- 'भाई मानो या ना मानो, मगर कोई द्वार पर दस्तक दे रहा है।' अब तो बड़ा पुजारी भी चिल्लाया कि बंद करो बकवास और चुपचाप सो जाओ। न कोई कभी आया है और न कोई कभी आएगा। ये सिर्फ इवा के थपेड़े हैं।

फिर वे सो गये। वे सुबह उठे। और जब उन्होंने द्वार खोला, तो सब ठगे रह गए-अवाक। रथ के पहियों के निशान मंदिर के द्वार तक बने थे। रथ आया। रथ वापिस लौटा। चिह्न पड़े थे। कोई सीढियों पर चढा, उसके पद चिह्न थे। तब वे बहुत रोने लगे। लेकिन अब तो रोने से कुछ भी नहीं हो सकता। अवसर जा चुका था।

जीवन ऐसा ही है। परमात्मा तो रोज आता है, प्रतिपल आता है। घोषणा करे न करे, आता तो है ही। मगर हम सोए हैं और हम अपने को समझा लेते हैं। पक्षी बोलते हैं तो हम कहते हैं यह तो पक्षियों की आवाज है। उसकी आवाज हमें सुनाई नहीं पड़ती। वृक्षों से हवा गुजरती है तो हम कहते हैं कि वृक्षों से हवा गुजरी, गुजरा तो वही है। सब चिह्न उसी के हैं, सब हस्ताक्षर उसी के हैं। लेकिन यह उसी को दिखाई पड़ता है, जो परिपूर्ण रूप से जागा हो।

जागने के दो उपाय हैं। या तो महान संकल्प करो कि निद्रा टूट जाए, या ऐसा गहन प्रेम करो कि उसकी प्रतीक्षा में पलकें झप न पाएँ।

मीरा बाई कहती हैं-'सब सखियन मिलि सीख दई, मन एक न मानी हो।' सब सखियाँ समझाती हैं। सारा संसार समझा रहा है। घर के लोग समझा रहे थे। प्रियजन समझा रहे थे। परिवार के लोग कहते थे-मीरा पागल न बनो। यह सब पागल पन है। कहाँ का कृष्ण, कैसा कृष्ण, यह किसकी मूर्ति लिए फिरती है? यह किसका तू गुणगान गा रही है। यह सब तेरी कल्पना का जाल है।

यही बात तो लोग हमें कह रहे हैं। किन संस्कारों की बात कर रहे हो। आज के युग में बीती सदियों की बातें चलने वाली नहीं। बच्चों की जिन्दगी खराब कर रहे हो। संसार के लोग ऐसी ही बातें करते हैं। ये उन पुजारियों जैसे ही हैं। उनकी बातों से राजी हो गए तो यह दुर्भाग्य का क्षण है। लेकिन यदि सोए हुए लोगों की बातों से राजी नहीं होते तो यह अहोभाग्य है। जागे हुए आदमी के साथ तो पागल होने में भी अहोभाग्य है और सोए हुए लोगों के साथ बड़े समझदार बने रहने में भी दुर्भाग्य है।

स्वयं जागना है तो निद्रा तोड़ने वाले महान संकल्प की राह पकड़नी होगी। उस राह पर निरंतर बढना होगा जहाँ-'प्रेम में मुद् मंगल हो नारायण सोते हैं।'

पृष्ठ 21 का शेष

महान क्रांतिकारी-राव गोपालसिंह खरवा

राठी व्यावर, राव गोपालसिंह के अभिन्न साथी एवं सहयोगी बनकर क्रांति संघर्ष में कूद पड़े। उन वीर वृति कर्मठ पुरुषसिंहों ने, राजाओं द्वारा शासित राजपूताना प्रदेश में भी अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह करने का साहसिक कार्य कर दिखाया। उसी क्रान्ति संघर्ष के अग्रणी नेता राव गोपालसिंह का जीवन वृत्त, जो सशस्त्र क्रान्ति धर्मी कार्यों से ओतप्रोत है, संक्षेप में प्रस्तुत करने का यह एक विनम्र प्रयास है। यह शासकीय इतिहास नहीं है। अपितु देशहित में समर्पित एक परमत्यागी और तेजस्वी क्रांतिकारी योद्धा एवं अनन्य भगवद् भक्त की पावन जीवन-गाथा है, जिसे पढ़कर सुविज्ञ पाठक जीवन दायिनी ऊर्जा और प्रेरणा ग्रहण कर सकंगे। **(क्रमशः)**

हार्दिक श्रद्धांजलि एवं वंदन

हम सबके प्रेरणास्त्रोत एवं
आदर्श समाजसेवी

पूज्य गुलाबसिंह जी रावलोत

पूर्व अध्यक्ष महाराजा गजसिंह
शिक्षण संस्थान, ओसियां,
पूर्व अध्यक्ष पेंशनर्स शाखा, ओसिंया व
सेवानिवृत्त प्रधानाचार्य के देहावसान पर
हार्दिक श्रद्धांजिल एवं सादर वंदन

-: श्रद्धानवत :-

गोपालसिंह भलासरिया, अध्यक्ष महाराजा गजसिंह शिक्षण संस्थान, ओसियां

महेन्द्रप्रताप सिंह भाटी गिराब	भोपाल सिंह बड़ला	जितेन्द्र सिंह भाटी सरपंच प्रतिनिधि बड़ला	पदमसिंह औसियां
भोमसिंह निम्बो का तालाब	स्वरूपसिंह बड़ला	समुन्द्र सिंह तिंवरी	जालम सिंह भेड़
नाथुसिंह बापिणी (सरपंच)	बाबुसिंह बापिणी (सरपंच)	मूलसिंह गिंगाला	गोरखसिंह बापिणी
देवी सिंह नांदिया	जयसिंह चाँदरख	भीमसिंह रायमलवाड़ा	पहाड़सिंह भाटी रायमलवाड़ा
विजयसिंह भाटी नांदिया कल्ला	देवीसिंह शेखावत पंडित जी की ढाणी	भोपाल सिंह तापु	अर्जुनसिंह किजरी

प्रेमसिंह पांचला

7 दिसम्बर :

पूज्य तनसिंह जी

के निर्वाण दिवस पर पुण्य स्मरण

प्यास बुझाते तूने दीप ही जलाए हैं

तार तार रंगे कितने आंगन सजाए हैं

IAS / RAS

तैयारी करने का राजस्थान का सर्वश्रेष्ठ संस्थान

स्प्रिंग बोर्ड

Spring Board

Springboard Academy, Main Riddi Siddi Choraha,
Opposite Bank of Baroda, Gopalpura, Bypass Jaipur

Website : www.springboardindia.org

दिसम्बर, सन् 2020
वर्ष : 57, अंक : 12

समाचार पत्र पंजी.संख्या R.N.7127/60
डाक पंजीयन संख्या - Jaipur City /411/2020-22

संघशक्ति

ए-8, तारानगर, झोटवाड़ा,
जयपुर-302012
दूरभाष : 0141-2466353

E-mail : sanghshakti@gmail.com
Website : www.shrikys.org

श्रीमान् ....

....

....

स्वत्वाधिकारी श्री संघशक्ति प्रकाशन प्रन्यास के लिये, मुद्रक व प्रकाशक, लक्ष्मणसिंह द्वारा ए-8, तारानगर, झोटवाड़ा, जयपुर से : गजेन्द्र प्रिन्टर्स, जैन मन्दिर सांगाकान, सांगो का रास्ता, किशनपोल बाजार, जयपुर फोन : 2313462 में मुद्रित। सम्पादक-लक्ष्मणसिंह